सुन्दर साहित्य-माला



सम्पादक

श्रीरामलोचनशरण बिहारी

निर्माल्य

रचयिता—पं० मोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी'

यह वही रचना है, जिसकी प्रशंसा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं प्रसिद्ध विदेशी विद्वान् श्रीयुत ग्रियर्सन-साहब ने की है। पंक्ति-पंक्ति में आकर्षण है। हिन्दी-साहित्य के धुरंधर समालोचक पं० गणेश बिहारी मिश्र लिखते हैं—

मैंने "निर्माल्य" को ध्यान से दो बार पढ़ा, आज-कल खड़ी-बोली की जो तुकबन्दियाँ निकला करती हैं, यदि नये लेखक आपका अनुकरण करें, तो मेरे विचार में इस नवीन प्रणाली का विशेष गौरव हो सकता है। इसमें बहुत-सी कवितायें हृदय पर अधिकार जमाने वाली हैं। आपकी कवितायें अश्लीलता से बिल्कुल पाक हैं। मैं आपकी रचनायें पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ। ये बहुत ही सरल, सरस तथा भावपूर्ण हैं। उपमायें भी अच्छी दी गई हैं। मैं आशा करता हूँ कि आप यदि खड़ी-बोली की सेवा इसी प्रकार करते रहें, तो आपका अनुकरण करके बहुत-से नवयुवक उत्तम कवितायें करने लग जायँगे।

हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

सत्यं शिवं सुन्दरम्

एकतारा

उठा 'एकतारा' हे कवि ! गा दे ऐसा मनमोहन गान
शिवदेव के युग-युग का हो भंग अचानक दुस्तर ध्यान

पं० मोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी'

हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (बिहार)

प्रकाशक
वैदेहीशरण, हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय
प्रथम संस्करण, श्रावण-शुक्ला सप्तमी, १९८४

चुन ले फूल, सजा ले डाली,
पूजा को हो जा तैयार;
अभी खुला है करुणाकर के
रत्न-खचित मन्दिर का द्वार।
छोड़ क्षुद्र पद-चिन्ह, पूर्व के
पद-चिन्हों पर, चले विभोर;
भक्त जा रहे हैं वीणा की
द्रुतगति-सा क्रमशः उस ओर।

× × ×

उठा एकतारा हे कवि!
गा दे ऐसा मनमोहन गान;
विश्वदेव के युग-युग का हो
भंग अचानक दुस्तर ध्यान।

मुद्रक
माधव विष्णु पराड़कर
ज्ञानमण्डल यंत्रालय, कबीरचौरा, काशी



'बालक'-सम्पादक

श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी

Not marble nor tho gilded monument of princes shall out-live this powerful rhyme. —Shakespeare.

विषय-सूची

एक झंकार

सम्पादक का कथन—

'वियोगी'जी की इस दूसरी रचना को प्रकाशित करते हमें विशेष आनन्द हो रहा है। इनकी पहली रचना—'निर्माल्य'—को प्रकाशित करते समय हमें ज़रा भी आशा नहीं थी कि एक नौसिखे नवयुवक की प्रथम कृति को साहित्य-संसार इतने प्रेम और आदर से अपनावेगा, कि उत्साहित होकर हमें इनकी दूसरी रचना को इतनी जल्दी लेकर पुनः उपस्थित होना पड़ेगा।

वियोगीजी के लिए गौरव का विषय है कि धुरंधर साहित्य-आचार्यों ने इनकी नवीन कविता-शैली की प्रशंसा की है, और नवयुवक-रचयिताओं के लिए उसे पथ प्रदर्शक बतलाया है।

यह 'एकतारा' कैसा है—इसका निर्णय तो साहित्य-सेवी ही कर सकेंगे। 'डाक्टर झा' ने अपने उपोद्घात में इसके विषय में जो कुछ कहा है—हममें उतनी शक्ति नहीं कि उससे कुछ अधिक कह सकें। 'निर्माल्य' के ऐसा यह 'एकतारा' भी पाठकों की आत्मा को परितोष दे सके—हमारी यही कामना है।

अन्त में, संस्कृत साहित्य के विश्वविश्रुत विद्वान्, सुप्रसिद्ध दार्शनिक, प्रयाग विश्वविद्यालय के यशस्वी वाइस-चांसलर महा-महोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, एम० ए०, डि० लिट् के प्रति हम अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का उपोद्घात लिखकर 'कविवर वियोगीजी' और हमारी 'सुन्दर-साहित्य-माला' को, समान-रूप से, गौरवान्वित किया है। इस 'उपोद्घात' के कारण ही सही, 'एकतारा' का नाम हिन्दी के स्थायी साहित्य में सादर लिया जायगा—इसमें सन्देह नहीं।

यदि हिन्दी-पाठकों ने हमें उत्साहित किया, तो वियोगीजी की अन्य गद्य और पद्य रचनाओं को भी हम शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे।

व्रीड़ा

मलयानिल में मिलकर आई
अभूतपूर्व मनमोहक तान;
चौंक उठा मैं—कहाँ गा रहे हैं
ऐसे गायक गुणवान ?

मानों स्वर के सुदृढ़ सूत्र में
मैं उस ओर खिंचा बँधकर;
पहुँचा तेरी भरी सभा में
मंत्राकर्षित-सा सत्वर।
बड़े-बड़े गायक तंत्री ले
एक एक कर गाते थे;
तीनो लोक कँपा देते थे
स्वर-सुरसरित बहाते थे।
राजा, रंक, सभी बैठे थे
होता था सबका आदर;
देश-देश से चले आ रहे थे
गुण-ग्राहक रसिक-प्रवर।

तूने मुझे सु-गायक-दल में
बैठाया, सम्मान किया;
और सभा में गान सुनाने का
आदेश प्रदान किया।

काँप रही थीं हाय! उँगलियाँ
कैसे तार मिलाता मैं;
सर चकराता था गुणियों के
सम्मुख कैसे गाता मैं!

वैशाख कृ० १०, १९८३]

उपोद्घात

कवि की आज्ञा है 'उपोद्घात लिख दो'। 'उपोद्घात' में ग्रन्थ का आशय लिखा जाता है—ऐसी ही चाल है। फिर शास्त्र की आज्ञा है—'जीवत्कवेराशयो न वर्णनीयः'। ऐसी दुविधा में क्या किया जाय। विधि-निषेध रहते हुए ऐच्छिक विकल्प करना—ऐसा सिद्धान्त मीमांसकों का है। पर इस विकल्प का भी तो अवकाश नहीं है। इसलिए इस संशय-संकट से छूटने का एक-मात्र उपाय है। इन सरस पद्यों को पढ़कर जो भाव मेरे मन में आये हैं उन्हीं का दिग्दर्शन करके इस उपोद्घात को सार्थक करूँगा।

कविवर भवभूति ने कहा है—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्-
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्

कवि Shelley ने कहा है—

Our sincerest laughter
With some pain is fraught
Our sweetest songs are those
that tell of saddest thought.

इन दोनों सूत्रों का समर्थन इन पद्यों के पढ़ने से होता है। कवि का भाव जो कुछ हो—मुझे इनमें सर्वत्र करुण रस ही की झलक का भान होता है। सम्भव है, मेरी वृद्ध-रुग्णावस्था ही इसका कारण हो। पर 'प्यारी से', 'हृदय-का हाल' 'प्यार', 'कामना', 'आँसू', जिस किसी पद्य को पढ़ता हूँ—भावान्तर रसान्तर रहते हुए भी सबके अन्तर्गत एक आभा करुण रस ही की दीख पड़ती है। रस भी एक प्रकार से ईश्वर ही का अवतार माना गया है। इसी से—

जिनकी रही भावना जैसी
हरि-मूरति देखी तिन तैसी

—के अनुसार पाठक या श्रोता के हृद्गत भाव का बड़ा प्रभाव पड़ता है। फिर, वासनारूपेण हृदय में स्थित स्थायी भाव ही रस में परिणत होता है, यही साम्प्रदायिकों का सिद्धान्त है। इसके अनुसार 'हरि-मूरति देखी तिन तैसी' यह उक्ति जिन पद्यों में सार्थक हो, उन्हीं पद्यों को सरस कहना होगा। और, मेरी धारणा ऐसी है कि इस पुस्तिका में जितने पद्य हैं, सभों के प्रसंग में ऊपर की उक्ति चरितार्थ होती है। इससे बढ़कर और काव्य या कवि की प्रशंसा में क्या कहा जा सकता है।

सरस कवि दीर्घायु होकर कविता-संसार की शोभा बढ़ावें, यही मेरा आशीर्वाद है।

सिनेट-हाउस इलाहाबाद-युनिवर्सिटी प्रयाग	गंगानाथ झा (महामहोपाध्याय, एम. ए., डी. लिट्. —वाइस-चांसलर)

चाह

खड़ा था दर्पयुक्त दुर्भेद्य
धैर्य-गिरि—जैसे पर्वतराज—
समय ने मारा उस पर ताक
घोर विध्वंसक दुख की गाज !
न वह सह सका भयंकर चोट,
फट पड़ा—निकली करुणा-धार ;
बह गये सुख, आशा, आनन्द—
बह गया जीवन का आधार ।

दिखाकर विश्वदेव को भानु—
भारती, संध्या-सखि के साथ—
गये मन्दिर के सीमाहीन—
स्वच्छ आँगन को त्याग अनाथ।

तरंगित-तटिनी-तट पर कौन
गा रहा है रो-रोकर गान!
पड़ी है नीरव तंत्री निकट
एकतारा बन हा भगवान्!

कहाँ मैं जाऊँ तट को त्याग
हृदय है भक्ति-भाव से हीन;
इसी करुणा-सरिता पर, देव!
दया कर ले आओ यह बीन।

विश्व करता है दीपक-दान,
आज मेरी भी है यह चाह;
वेदना को छन्दों में बाँध
मिटाया था जो अन्तर्दाह;
पुनः स्मृति से दूँ उसको लगा
लगा चेतना-वर्त्ति की छोर;
छोड़ दूँ कविताओं के दीप
अतल-जल में अनन्त की ओर।

दीपावली
१९८३

—वियोगी

एकतारा

卐

एकतारा

एकतारा

वेणु कहाँ से गूँथी किसकी
और कहाँ से निर्बल तार;
एकत्रित कर बना एकतारा
यह जीवन का आधार।
है अव्यक्त तरंगित इसमें
अन्तर का करुणा-सागर;
न, जानें किस कम्पित कर ने
इसे ग्रहण कर किया अमर।
इसके द्वारा व्यक्त सदा
करते हैं व्यथित मूक-रोदन;
जीवन का सर्वस्व यही है
यही दरिद्र-हृदय का धन।

है यह नहीं गायकों के
वादन-कौशल दिखलाने योग्य;
सप्त-स्वरों के नर्त्तन में
यह ठहरेगा सम्पूर्ण अयोग्य।
कर सकता, पर, मग्न
भारती का पंकज करुणा-जल में;
विश्वदेव का आसन यह
कम्पित कर सकता है पल में।
उमड़ा दे जग की आँखों में
आँसू—है इतनी क्षमता;
पर वीणा से, हे गायक!
कैसे होगी इसकी समता?
उसमें कला भरी है
करती है वह नवजीवन-संचार;
इसमें गृह-विहीन, एकाकी का
है नीरव हाहाकार।—
उसमें है संगीत और
इसमें है रोदन, हे गुणवान्!
इस प्रकार प्रत्यक्ष और
अन्तर में है वैषम्य महान।
—गुण-ज्ञाता उससे मोहित
होंगे, इससे सहृदय पीड़ित;
पर अनन्त में दोनों का
प्रभाव है अव्यापक, सीमित।

हृदय से—

हृदय न धड़क बेधड़क
उनका छलक पड़ेगा प्याला;
समझ न लें इस धड़कन को
वे कहीं दाल में काला।
कँप जाने से हाथ कहीं
नीचे न गिर पड़े माला;
पैर बढ़ावें कहीं न आगे
खुला जान कर ताला।

धड़कन के मिस क्या गिनता है?
जीवन की प्रत्येक घड़ी?
तड़प रहा है क्या अनियारी
आँखों की खा चोट कड़ी?

वैशाख कृ० २, ८३]

वियोगी

प्रलाप

आह प्रिये ! मैं बहुत पी गया
थोड़ा है प्याले में शेष;
हठ मत धरना, अभी न भरना,
करना है इसको निःशेष।
नहीं-नहीं भर दे खाली
होने के पहले ही यह पात्र;
हाँ-हाँ, बस कर, इसे न अब भर,
बचा हुआ है तलछट-मात्र।

उन कुंजों के तरु-पुंजों के
नीचे सोती है छाया;
तू बढ़ आगे, देख न जागे,
मूक उषे ! मैं भी आया।

मार्गशीर्ष कृ० १२,८२]

जीवन-पुस्तक

हे मेरे जीवन की पुस्तक!
भूतकाल के हे इतिहास!
हे भविष्य की विशद पंजिका!
हे विचित्रता के आवास!
कौन अलक्ष्य उँगलियों से
नित पृष्ठ उलटता है तेरा;
है सीमित उसका दिखलाना
है सीमित पढ़ना मेरा।
लिखी गई हैं कितनी गाथायें
मेरे आँसू से, आह!
हुए प्रवाहित कितने ही
पृष्ठों पर मेरे अश्रु-प्रवाह।
चमक रही है कितने पृष्ठों पर
मेरी आहों की आग;
कितने पृष्ठों पर मेरे चुम्बन के
पड़े हुए हैं दाग।
बड़े यत्न से लाया था मैं
इसे साथ ले जाऊँगा;
समय मिला तो कुछ कहानियाँ
पढ़कर, सखे! सुनाऊँगा।

वैशाख शु० ५, ८३]

 वियोगी।

प्यारी से—

जी करता है हृदय लगा लूँ,
आँखों पर बिठला लूँ मैं;
इस नीरस जीवन को
पल-भरमें ही सरस बना लूँ मैं।
जी करता है प्रेम-गीत
तेरी तंत्री पर गा लूँ मैं;
जग से नाता तोड़ नेह का
नाता आज लगा लूँ मैं।

तेरी एक अनोखी चितवन पर
हा हा बलि जाऊँ मैं!
मेरे हृदय-कुंज की कोयल!
कूक, वसन्त बुलाऊँ मैं।

वैशाख कृ० २, ८२ वि०]

अपराधी हृदय से—

मचल गया क्यों बना न उनके
चरणों का पापोश हृदय ?
क्यों तू हुआ कुचल जाने की
सुन आज्ञा बेहोश, हृदय ?
धड़क उठा क्यों उनकी
इच्छा के विरुद्ध बेपीर, हृदय ?
उनके द्वारा घोर तिरस्कृत हो
क्यों हुआ अधीर, हृदय ?
जीवन-भर की साध नष्ट
हो गई एक ही पल में !
अरे डूब मर, तू इन आँखों
के चुल्लू भर जल में !

श्रावण कृ० १०,८३ वै०]

पहला प्यार

छलक मदिरा का प्याला पड़ा
पी लिया नयनों ने जी भर;
नींद सो गई न जानें कहाँ?
न आई अस्थिर पलकों पर।
धड़कते हुए हृदय को थाम
नशे में बीती सारी रात;
खुमारी गई न दिन में, आह!
आ गई फिर भी प्यारी रात।

घूँट—हाँ एक घूँट मिल जाय
लगा लूँ होठों से प्याला;
देख कर विश्व चकित हो जाय
मद-भरी आँखें गुलाला।
अरे, यह इतनी है सुकुमार
सहेगी क्या चुम्बन का भार;
प्रकट उसपर न कहीं हो जाय,
देव! यह मेरा पहला प्यार।

छिपा कर अपने में निजको
दूर से एक नजर भर कर—
देखने की है अभिलाषा
अलौकिक वह मुखड़ा सुन्दर।
हृदय में कम्पन बन कर बसे
रहे इस तन में बन कर प्राण;
रहें नयनों में बन कर ज्योति
रहे जीवन में बन कल्याण।

ढालती रहे सदा मदिरा,
छलकता रहे सदा प्याला;
सदा उन्मत्त बना ही रहे
रात-दिन, यह पीने वाला!
व्याकुल अधरों का संयोग
दो कम्पित हृदयों का मिलन;
मधुर भावों का वह उत्थान
अहा! आनन्दोन्मीलित नयन।

भूल जा, अरे 'वियोगी', याद
दिलाता हूँ तू जा अब भूल;
व्यर्थ है उस वसन्त की याद
कहाँ हैं वे कलियाँ, वे फूल?
विश्व की आज वेदना से
मिला ले इस वीणा के तार;
न होगा व्यर्थ, न होगा व्यर्थ
सत्य है तेरा पहला प्यार!

उठा कर दर्पण-सा कर में
देख कर एक बार हँस कर;
हृदय से लगा त्योरियाँ बदल
पटक डाला, हा! पत्थर पर।
क्या कहूँ—पहचाना भी नहीं
और कर बैठो अत्याचार;
चूर हूँ—चूर-चूर हो गया
हाय! वह मेरा पहला प्यार।

ज्येष्ठ शु० ७,८२ वै०]

प्रेम का सच्चा रूप

कहा सलभ ने—'अहा, तुम्हारी
रूप-माधुरी धन्य, प्रिये !
हो स्वीकार, खड़ा हूँ
जीवन-सुमनों का उपहार लिये ।
भस्म-रूप में परिणत होकर
भी यदि तुमको पाऊँ मैं ;
तो इस तुच्छ देह, यौवन को
पैरों से ठुकराऊँ मैं !'
दीप-शिखा बोली—'कि हृदय में
ऐसे भाव न आने दो ;
स्वयं मुझे अपनी ही ज्वाला में ,
प्रियतम ! जल जाने दो !'

पौष कृ० ६, ८२ वै०]

पानी

बैठी दुखिया अश्रुकणों का
सुन्दर हार पिरोने ;
या जग के निर्ममता-मल को
करुणा-जल से धोने।
या सनेह के विमद क्षेत्र में
निर्मल मुक्ता बोने;
यां बैठी है, हाय 'वियोगी'
के वियोग में रोने।
सूखा स्रोत दया का, तुम
हो गये, देव ! बेपानी ;
पानी बरसा कर इसने
रख लिया तुम्हारा पानी।

अग्रहायण शु० १०, ८२]

अपनी बात

इच्छा होती है हँस तेरे
तिरस्कार को सहन करूँ;
इच्छा होती है हँस कर
अन्याय-भार को वहन करूँ।
इच्छा होती है सिर नीचे
कर सुन लूँ सारी फटकार;
इच्छा होती है आँसू
पी कर सह लूँ सब अत्याचार।

जिन चरणों से कर आघात
जगाया तूने सोने पर,
जिन चरणों के आश्रय में
दोनों हैं—सुधापात्र, विषधर।
जिन चरणों से तूने मेरा
आशा-कुसुम कुचल डाला;
जिन चरणों से ठोकर मार
हटाया प्रेम-भरा प्याला।
इच्छा होती है उन चरणों को
मैं प्यार करूँ जी भर;
पूजा करूँ, लगा लूँ उनकी
धूलि हृदय पर, आँखों पर।

वैशाख कृष्ण २, ८२ वै०]

हृदय का हाल

करुणावेग-प्रकम्पित-स्वर है
क्या गाऊँ, कैसे गाऊँ ?
चित्त ठिकाने कर लूँ यदि मैं
तेरा अनुशासन पाऊँ ।

गाऊँगा तू मतकर हठ
है लाचारी क्या बतलाऊँ ?
शब्द नहीं मिलते हैं कैसे
हाय ! तुझे मैं समझाऊँ ।

देव ! भुक्तभोगी कर लेगा
सुनते ही अनुभव तत्काल ;
हृदय-हीन ! तू मत सुन मेरे
कुचले हुए हृदय का हाल ।

वैशाख कृ० ९, ८३]

स्वार्थी

कली ! न चुम्बन चंचरीक को दे
मत खेल अनिल के संग;
छूने दे न कलंकित शशि के
निर्मम अयुत करों को अंग।
कभी उषा को दिखा न अपना
रूप हृदय हरने वाला,
मत रख तृषित विश्व के सम्मुख
सौरभ-मदिरा का प्याला।
निहित रहे तेरी सुवास में
कोमल भावों का उत्थान;
आँसू बन, छिप नयनों में,
खेलो अधरों पर बन मुस्कान।

श्रावण शु० ५, ८३]

दरिद्र-नारायण

हृदय-द्वार हैं रुद्ध, नहीं
दुखिया भीतर घुसने पाते;
धूल-भरे पैरों से डरते हैं
उनके सम्मुख जाते।

चना-चबेना भरी सभा में
लज्जित होते हैं खाते;
हैं निर्गन्ध सुमन,
चरणों पर रखने में हैं सकुचाते।

हैं नत-मस्तक, गत-गौरव,
हत-आसन, जीवन्मृत हारे;
देव! इसी से हैं तेरे
प्राणों से भी दरिद्र प्यारे।

तिरस्कार का तीखा रस
नीरव रह कर चख लेते हैं;
आशा के अंकुर पर निर्मम
बन पत्थर रख लेते हैं।
देव! डरो मत, सूख गया है
कंठ, न निकलेगी अब आह!
चरण न भीगेंगे आँखों से
गिरते सूखे अश्रु-प्रवाह।

+ + +

वीणापाणि! करुणस्वर में गा
सारा विश्व हिला देना;
पर, इनके हृत्कम्पन से
वीणा के तार मिला लेना!

शुद्ध चैत्र शु० १५, ८३]

अनुरोध

छुटी उँगलियों की मेहँदी
गिनने से आशा की घड़ियाँ;
मलयानिल ! तू कब खोलेगा,
इन कुसुमों की पंखड़ियाँ ?
परिमल भरा हुआ है, बन्दी है
सौरभ इनमें अपार;
कहीं बिखेर न देना चुपके-से
आ, अहो ! समीर, उदार ।
जब निदाघ की दोपहरी में
धूल उड़ेगी चारो ओर;
तब विकसित कर इन्हें बना देना
सुवास से मुझे विभोर ।
वैशाख शु० ११,८२]

सौभाग्य

अपराधी हैं नहीं पड़ेंगे
टोटे कभी प्रमाणों के;
पर रो-रो दहला देंगे
हम आज हृदय पाषाणों के।
हैं प्रस्तुत स्वागत करने को
तेरे तीखे बाणों के;
चिन्ता नहीं अगर लाले
पड़ जायेंगे इन प्राणों के।

है सौभाग्य स्वयम् जाकर
फँस जाना तेरे जालों में;
है सौभाग्य भरा जाना
भूसा इनकी मृत खालों में।

अग्रहायण कृ० १३, ८३]

चले !

खिलने के पहले ही कितने
सुमन वृन्त को छोड़ चले ;
परिचय होने के पहले ही
कितने जन मुँह मोड़ चले ।

है रिक्तों की पूछ कहाँ
ये जाते हैं, तो जाने दो ;
अथक परिश्रम करके वे क्यों
कौड़ी-कौड़ी जोड़ चले !

बतलाईं थीं न' जानें
कितनी ही बातें गुप्त उन्हें—
बड़ा दुःख है अन्त समय में
कर के भंडाफोड़ चले ।

है आश्चर्य यही हे भगवन् !
ऐसे भी हैं हत-भागे ;
जो लगने के पहले ही
निर्मम बन नाता तोड़ चले । -

शुद्द चैत्र शु० ८,८३]

हा हन्त !

छिन्न-भिन्न हो गईं
पवन के झोकों से हथकड़ियाँ;
बिखर गईं चन्द्रिका-भार से
सुमनों की पंखड़ियाँ।
लोलुप दृष्टि-पात से ही
टूटीं सीपज की लड़ियाँ;
यह कैसी हैं, हे करुणाकर,
हाय ! नाश की घड़ियाँ !

अमर प्रदीप तुच्छ-तम शलभों
के द्वारा अवसान हुआ !
छोड़ कमल उड़ गया भ्रमर
कैसा तेरा आह्वान हुआ।

पौष कृ० १२, ८३]

मधु-चक्र

वन वन भटक बिंधा अपने को
कंटक से, हा, रे अनुराग!
संग्रह करता हूँ सुमनों का
सुखद-सुवासित-मधुर-पराग।
लूट प्रकृति के कोषों को
केवल अपना घर भरता हूँ;
बन निर्मम कितनी कलियों के
यौवन का मद हरता हूँ।
विविध भाँति के लुटे हुए
उपकरणों को कर एकाकार;
सहकर शीत, ताप, वर्षा का
बहुत समय तक अत्याचार।
बड़े यत्न से प्रस्तुत करता
हूँ 'मधु-चक्र' सुधा-आधार;
घोर कृपणता से उसकी
रक्षा करता हूँ तन-मन वार।
रवि-कर, शशि-शीकर उसपर
न पड़े इसलिए सदैव सचेत—
—रह कर, आवृत क्षुद्र पंख से
रखता हूँ मैं यत्न-समेत।

छाया-माया-मय जग में मैं
मान रहा हूँ उसको सत्य ;
मेरे क्षणिक-क्षुद्र-जीवन का
है वह सचमुच सुखमय तथ्य ।
मैं ही उसका निर्माता हूँ
वह मेरा है, हे भगवान !
पर निज से मैं सदा कृपणता
करता हूँ, हो कर अज्ञान ।
छिपा हृदय में फणि की मणि-सा
चिंतित समय बिताता हूँ ;
अपनी ही रचना पर मैं
अपने को सदा भुलाता हूँ ।
ध्यान नहीं है—है भविष्य के
भीतर छिपा हुआ वह कौन—
बढ़ा आ रहा है मन की
चंचल गति-सा, छाया-सा मौन ।
उसके वज्र कठिन पंजों से
मेरे संचित धन की, हाय !
रक्षा कौन करेगा, मेरे
रंक पंख होंगे निरुपाय !

\+ + +

जग की लोलुप-रसना को
उस मधु की स्वाद चखा दूँ मैं;
विस्मृति के अन्तर में अपनी
स्मृति का चिन्ह बना दूँ मैं ।

श्रावण कृ० ५, ८३]

निर्ममता

पूछ रहा है खोद-खोद कर
दीपक से जलने का हाल;
पूछ रहा है तोड़ वृन्त से
फूलों को—'क्यों हो बेहाल !'
पूछ रहा है कुचले हुए हृदय
को कुचल—'बताओ पीर';
कटे हुए पर नमक रगड़ पूछा—
—'क्यों हुए सुधीर ! अधीर ?'
निर्मम ! छेड़ मुझे मत यों ही
रो कर समय बिताने दे;
विस्मृति के गह्वर से स्मृति को
बाहर हाय ! न आने दे !

वैशाख कृ० १२,८३ वै०]

स्वागत

देव ! द्वार पर खड़ा हुआ है
चातक स्वागत करने को;
नीरद खड़े हुए हैं धोकर चरण
थकावट हरने को।
सुमनस सुमन हार ले कर
है खड़ा तुझे पहिराने को;
त्रिविध समीर खड़ा है
सादर सुखकर विजन डुलाने को।
पलक-पाँवड़े पड़े हुए हैं,
बिछा हुआ है हृदयासन;
हैं प्रस्तुत नैवेद्य जगत्-तरु के—
—फल जीवन, नियति, मरण।

वैशाख शु० ११,८३]

भयंकर भूल

मैं अपनी निर्जन कुटिया में
सुख से करता था विश्राम;
कर्म-हीन उस दोपहरी में
नहीं मुझे था कोई काम।
सम्मुख मुग्धा की कटि-सी
पतली तटिनी बहती थी;
नीरस तट से कल-कल मिस
मन की बातें कहती थी।
उठा वीचि-रूपी असंख्य सिर
नीर देखता था शोभा;
देख चाहता प्रकृति-नटी की
किसका मन न भला लोभा?
अग्र देव-मन्दिर पर, अहा!
कपोत-कपोती का कूजन,
बंधु-सम्मिलन—गुप्त भाव के
परिचायक—हरते थे मन।

सोच रहा था—जिनके अन्तर में
है शान्ति अटूट बनी ;
नहीं जानते क्या हैं जग के
कलह, कपटता, तनातनी।
सचमुच स्वर्ग निछावर है
उनके ही चरणों पर, हे नाथ !
अखिल विश्व से दबा हुआ
नर है अतृप्त, लाचार अनाथ।
इसी प्रकार विचारों का मैं
जाल बुन रहा था स्वच्छन्द ;
खोज रहा था मानों अपने
अन्तर-तम में परमानन्द।
इसी समय सरिता के वक्षस्थल
पर छोड़ क्षणिक रेखा ;
एक नाव को, मूक स्वप्न-सा,
तट पर आ लगते देखा।
उतरे दो जन दीन-वेष में
संग एक युवती नारी ;
विधि की इस रचना-कौशल
को देख हुआ मैं बलिहारी !
चले गये सुख की घड़ियों-से
तीनों वे सुषमा के धाम ;
पीछे सुना यही थे सीता,
लखन, पतितपावन श्री राम।

पौष संक्रान्ति, ८३]

अन्धकार में आलोक

'लो वह गया' ! चमक कर
बिजली ने तेरा पथ दिखलाया;
हिम-शीतल कर स्वयम्
मरण ने तेरे आगे फैलाया।
चला प्रलय की झंझा के रथ
पर चढ़ न' जानें किस ओर;
छूट गया कोमल हाथों से
कर्म-सूत्र का कर्कश छोर।
चला गया, हा! लोह-शृंखला
बजी, द्वार अब बन्द हुआ;
लौट चलो, है हर्ष यही
वह बन्दी था, स्वच्छन्द हुआ।

माघ कृ० ४,८२]

एकान्त

मेरे इस निराश जीवन के
हे प्रियतम सहचर एकान्त !
हे कल्लोलित-कर्म-सिन्धु के
मर्मस्थित सुखदायक 'शान्त'।
हे कवि के सर्वस्व, अहो
साधक के साधन के आधार !
इस कोलाहल-ग्रस्त 'वियोगी'
का हो अभिवादन स्वीकार।

हे कल्पना-सुरसरी के गिरिराज!
स्वर्ग के हे प्रति-रूप!
कविता-कृषि के लिए तुझे
हम कह सकते हैं क्षेत्र-अनूप।

+ + +

तेरे चरणों का आश्रय ले
आदिकाल से ऋषि, विद्वान—
युग-परिवर्तक बल संचय कर
करते हैं जग का कल्याण।
हे जगतार्क-तप्त-जग के
शीतल-कर्त्ता, सुधांशु एकान्त!
तेरे शान्त अंक में आये हैं हम
होकर श्रान्त, अशान्त।

जिस प्रकार शत-शत सरितायें,
सागर में मिल जाती हैं;
उस असीम से भिन्न नहीं वे
फिर अपने को पाती हैं।
उसी तरह तेरी महानता में
अपने को कर तल्लीन;
कर देंगे अस्थिरता को हम
निश्चय ही अस्तित्व-विहीन।

श्री मन्नूलाल-पुस्तकालय, गया।
१० जनवरी १९२५ ई०

भिखारी

अरे !   निकल पड़ा प्रासाद त्याग कर
अंजलि-पुट ले क्यों पागल !
धनी-विश्व के आगे कर फैलाना
होगा हाय, विफल !
क्योंकि, मधुमक्षिका नहीं देतीं मधु
वे हैं धनी, किन्तु अनुदार;
सुमन पवन पर देते हैं,
यौवन-पराग-सौरभ-सुख वार !
इसलिए, माँग दरिद्रों से वे करुणा-रत्नाकर
नयनों में भर;
छान पुतलियों से सलछट
बरसा देंगे तुझ पर गौहर !
मार्गशीर्ष कृ० १३,८२]

जादू !

चल गया जब तेरा जादू
रज्जु को लगा समझने साँप ;
मृगा के लिए बिछा कर जाल
फँसा उसमें जा व्याधा आप !

केशरी समझ छाया को सिंह
शरण में आया हो कर त्रस्त—
झुकाया चिर-गर्वोन्नत शीश;
उदय ने समझा निज को अस्त ।

वीर ने निज को नारी जान,
समर में डाल दिया हथियार,
हाँकने लम्बी-चौड़ी लगे
जन्म के क्लीव उठा तलवार !

विजेता छोड़ भगे मैदान
विजित की सुन कर हाहाकार ;
राहु ने चुप रह कर सह लिये
भानु-शशि के सब अत्याचार ।

आपको समझ निःस्व, सम्राट—
—अंजली-पुट ले निकले आह !
भिखारी से भी लेकर भीख
मिटाने लगे उदर की दाह !

समझ कर अपने को महिपाल
चढ़ गया सिंहासन पर दीन ;
घेर कर उसे खड़े हो गये,
जगत-भर के श्रीमान्, प्रवीण ।

देख विशृंखलता ऐसी
दया का हुआ शीघ्र संचार ;
हटाया तूने कुहक समस्त
मुक्त हो विहँस उठा संसार ।
+ + +
नाथ ! ऐसी लीलायें नित्य
देखते हैं हम आँख पसार ।
समझते नहीं स्यात है हमें
देखने भर का ही अधिकार ।

चैत्र (अधिक) शु० २, ८३ वै०]

प्यार

यह तेरा है प्यार, जिसे मैं
समझ रहा था निठुर मार ;
धिक् मेरी दुर्बुद्धि, धन्य तेरा
है देव ! प्रेम-व्यवहार !

प्यार किया सुमनों को
तोड़ा, गूँथा, हार बना डाला;
प्यार किया सोने को दाहा,
पीटा, तार बना डाला।

प्यारी नदियाँ हैं सागर में
मिल अपनापन खोतीं;
प्यारे होने के कारण ही
छिदे मनोहर मोती !

पौष कृ० ५, ८२]

असमंजस

हाय ! चुराई गईं न आँखें
जब आया तू मेरे पास ;
छिप न सकी वेदना-पूर्ण
अन्तर में वह निर्लज्ज उसास ।
इन होठों से रुक न सकी
यह मधुर मुस्कराहट प्यारी ;
मान हुआ काफूर, कहो मैं
क्या करता, थी लाचारी !

जी करता है मिलूँ न तुमसे
दूर रहूँ, अभिमान करूँ ;
पर कहता है हृदय—
'तू ठहर, मैं अपने को दान करूँ ।'

माघ कृ० ३, ८२]

प्रियतम से—

पूछो, शलभों से क्यों जलते हैं
दीपक में जा-जा कर ?
पूछो, पंकज क्यों खिलता है,
सह दिनकर की किरण प्रखर ?
पूछो, भ्रमरों से क्यों चलते हैं
वन-वन में वे मारे ?
पूछो जरा चकोरों से क्यों
खा लेते हैं अंगारे ?
पूछो सूर्यमुखी से क्यों वह
सारा दिन तप करती है ?
रवि की चारो ओर भाँवरे
यह धरनी क्यों भरती है ?
पूछो नाथ ! पपीहों से
तुम उनके अन्तर-तम की बात;
क्या-क्या बीत रही है उनपर,
सहते हैं कैसे आघात ?
यदि सहृदय हो तो फिर
क्या मैं तुम्हें खोलकर बतलाऊँ ?
हृदय-हीन हो तो फिर कैसे
कथा हृदय की समझाऊँ ?
[बैशाख कृ० १३, ८३ वै०]

अवतार

किस अनादि के आदि काल में,
किस कल्पना-लोक में नाथ !
सुप्त विश्व की स्वप्न-दशा में
आया मूक रुदन के साथ।
कब ज्योत्स्ना-स्नात-रजनी में
बजी मधुर वंशी तेरी;
कितनी पंचदशी कामिनियाँ
हुईं न जानें कब चेरी ?
पूर्व-स्मृति के अमल मुकुर में
पड़ती है धुंधली छाया;
अटल ध्यान में विपुल कर्म-
-मिश्रण करने तू था आया।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी, १९८३]

मंगल-कामना

देव ! अनोखे वन-कुसुमों से
यह विकसित होना सीखें ;
शशि के अमल-धवल-मयूख से
यह विहसित होना सीखें ।

मन-मोहक सुन्दर निसर्ग से
भव्य भाव भरना सीखें ;
मलयानिल से अखिल भुवन के
श्रम-सीकर हरना सीखें ।

हे प्रभु ! इनके अन्तर-तम में
करुणा-स्रोत बहा देना ;
तीनों लोक अँगूठे चूमें
ऐसा भक्त गढ़ा देना ।

माघ कृ० ७, ८२ ई०]

वियोगी ।

रज-कण

मुक्तवृत्त

हे रज-कण !
हे मृण्मयी भूमि के एक अंश !
हे अनादि ! हे अन्ताहीन !! हे विश्व-नियन्ता !!!

सोते थे जो रस-खचित शय्या पर,
दुग्ध-फेन-निभ डाल बिछावन।
सुन कर जिनकी हाँक
धसकती थी यह धरनी
करते थे दिक्पाल त्रास से विह्वल,
घोर गर्जना;
सेफाली के सुमन सरीखे
सुन कर धनु-टंकार
टपक पड़ते थे नभ से
रवि, शशि, ध्रुव हो ग्रस्त;

था जिनका दावा कि उठाकर तीन लोक को
कंदुक-सा उछाल देंगे—नभ में, ठोकर से—
हाय! उन्हें भी एक रोज तुझमें मिलना ही पड़ा
काल के कुटिल चक्र के नीचे पड़ कर!

× × × ×

नहीं मानते थे जो सत्ता
विश्वेश्वर की,
ऋद्धि-सिद्धियाँ जिनका मुख
जोहा करती थीं,
सुर-दुर्लभ-ऐश्वर्य लोटता था जिनके
चरणों के नीचे; सागर से भी लिया
जिन्होंने दंड बाँध कर,
और इन्द्र ने जिनके भय से बरसाई थी—

स्वर्ण-राशि;
अर्थ-रत्न की क्या बिसात;
जो दे देते थे अस्थि चीर कर अपने तन की,
दान-रूप में;
हाय ! उन्हें भी एक-दिवस रुत्ता-रुत्ता बन
मिल जाना ही पड़ा शीघ्र तेरे स्वरूप में।

× × × ×

अत्याचारी, साधु,
निःस्व, राजा, पंडित, शठ
ऊँच नीच के भेद-भाव को भूल हृदय से
सोते हैं, हे साम्यवाद के आदि-प्रवर्तक !
एक साथ तेरी कठोर गोदी में सुख से !

× × × ×

जिनके यौवन के प्रदीप में कितने प्रेमी,
जले शलभ से आकर,
सुर ललनायें जिनकी देख अनिंद्य-माधुरी
चक्कर खा गिरती थीं,
जिनने सप्त खंड वसुधा को कर डाला था;
जिनके सीमाहीन-सुखद-कल्पना-सिन्धु से
निकले 'माघ', 'किरात', 'भट्टि', 'नैषद', 'कादम्बरि',
'अभिज्ञान शाकुन्तल'—ऐसे रत्न मनोहर।
जो स्वदेश के हैं गौरव,
माँ-सरस्वती के
कम्बु-कण्ठ के हार, जाति के उज्वल-जीवन।

आसागर महिपाल मौर्य, गुप्तादि कहाँ है ?
वैजयन्ति जिनकी उड़ती थी
नगपति की गगनस्पर्शी चूड़ा पर !
जिनके बल पर गर्व किया करते थे सुर-नर,
रजकण !
बता कहाँ तूने है उन्हें छिपाया
जल-बुदबुद से कहाँ हो गये लोप बेचारे ?

× × × ×

बैठ रामगिरि की चूड़ा पर—स्फटिक शिला पर,
वर्षाऋतु के प्रथम दिवस को
स्निग्ध-वृक्ष-छाया में,
एक विरह व्याकुल-कविवर ने मेघ-मन्द्र सा
गाया था जो विरह-राग, वह फैल गया था
यक्षपुरी की उस वियोग-विधुरा-रमणी तक
नचा रही थी जो कंकण-ध्वनि पर केका को
अपने सुख के स्वप्न-सदृश्य चारु उपवन में।
शार्दूल-विक्रीड़ित की वह ध्वनि-प्रतिध्वनि
टक्कर खाती फिरती है अब तक व्याकुल हो
अन्तस्तल के प्राचीरों से।
किन्तु नहीं वह गायक होता
पथिक, दृष्टि-पथ का, निर्मम !

रजकण !
क्यों तूने इस सुखद-सुमन को

मल कर मिला दिया रे नीच ! धूलि में
निर्दयता से ?
बता छिपाया कहाँ उसे तूने जिसकी है
याद दिलाती ताजमहल,
हो अटल सत्य-सा खड़ा भूमि के एक प्रान्त में !

बता, कहाँ है वह प्रेमी-सम्राट् ?
शरत् राका-सा जिसका—
—स्वच्छ स्नेह, शीतल होकर, मर्मर-पत्थर बन
खड़ा हुआ है ताज-महल का रूप ग्रहण कर ?

× × × ×

कहाँ गये वे धर्म-प्राण बालक
जिनके होठों पर
उषा खेलती थी, आँखों में
लहू खींच कर धर्मनाशकों की नृशंसता
थिरक रही थी ?

बता चोर ! क्यों चीर जगत के व्यथित हृदय को
चुरा लिये न जानें कितने दुर्लभ वैभव !
रक्खा कहाँ छिपा कर कृपया हमें बता दे
लेकर तेरा रूप उन्हें हम खोजेंगे, या
उनमें मिल कर ही जीवन को सफल करेंगे।

दिल्ली
जुम्मा मस्जिद की मीनार पर
१९८०

केन्द्र

बने हुए हैं क्षुद्रवृत्त का केन्द्र
हाय ! जगती-तल पर ;
वह विस्तृत हो जाता है
हम ज्यों-ज्यों उठते हैं ऊपर।
अब असीम में पहुँच
देखते हैं हम अपनी चारों ओर ;
पाते नहीं कहीं भी बाधा ,
बन्धन, संघर्षण या छोर।

मेघ की कामना

गगन-विचुम्बित नगपति से
समता पाने की चाह नहीं ;
जन का जीवनदाता कहलाने
का जरा उछाह नहीं।
बाधा-बन्धन-हीन विश्व में
हूँ मैं इसका हर्ष नहीं ;
जड़-भूतादि विनिर्मित होने
का है मुझे विमर्श नहीं।
नहीं चाहता चार दिनों के
लिए देव ! आदर पाऊँ ;
बस, वर दो, तेरे चरणों पर
बन दो बूँद बरस जाऊँ !

आषाढ़ शु० १, ८३ वै०]

कठोर कर्तव्य

(समय—मध्यनिशा । स्थान—श्मशान)

हरिश्चन्द्र—'कौन दग्ध करने आया है शव ले बिना चुकाये कर ?'

शैव्या—'कौन देव ! हा यह अभागिनी शैव्या है—हे करुणाकर !
दूर रहो—मैं हूँ पिशाचिनी, हाँ-हाँ इधर न आना नाथ !
कुचले हुए हृदय को आँचल से ढक ले आई हूँ साथ।
क्या कहते हो शव! ऐं यह क्या, मैं क्यों शव ले आऊँगी ?
मेरा अपना कौन यहाँ है—जिसका शव मैं पाऊँगी !
देखो इधर, हाँ जरा देखो, स्पन्दन-हीन हृदय है आह !
आई हूँ मैं उसे यहाँ ले मध्य निशा में करने दाह !
अधिक नहीं, बस चार लकड़ियाँ और एक छोटा अंगार,
इस भिखारिनी को दो भगवन! इतना भी तो बनो उदार !'

लाल—लाल—हा लाल कहाँ है ? अरे, हुई क्या मैं पगली ?
भला लाल को इस मरघट पर कहाँ खोजने आज चली !
यह मेरे कन्धे पर क्या है ? हाँ रोहित है ! सोता है ;
अरे शृगाल ! लाल सोता है—चुप रह तू क्यों रोता है ?
हरिश्चन्द्र—'शैव्ये ! शैव्ये !!'
शैव्या— 'नाथ ! क्या हुआ ?'
हरिश्चन्द्र— 'रोहित ने भी छोड़ दिया !
हम दुर्दैव पीड़ितों से क्या उसने भी मुँह मोड़ लिया ?'
शैव्या—'देव ! देव !! धीरे बोलो—रोहित सोता है सोने दो ;
चिन्ता करो न नाथ ! जगत में जो होता है होने दो ।
सुमन-चयन करने संध्या को लाल गया था उपवन में ,
वहीं सो गया—ले आई मैं उठा न सोचा कुछ मन में !'
हरिश्चन्द्र—'हा अभागिनी ! कौन सो रहा है, रोहित ? हा फूटे भाग !
मेरे हृदय, गोद में तेरी आज लग गई ध्वंसक आग !
कब बच्चा जागेगा, हँस कर दौड़ निकट कब आवेगा ,
कब अपना भोलाभाला मुखड़ा यह हमें दिखावेगा ।
प्रभो ! न जानें पाप हमारे कब के, उदय हुए हैं आज ,
न' जानें क्यों हाय ! गिराई गई अचानक हम पर गाज !
आशा का बस एक दीप था वह सहसा विलोग हुआ ,
छोड़ कमल उड़ गया भ्रमर कैसा तेरा आह्वान हुआ ?'
शैव्या—'नाथ ! चल बसा रोहित ? छिः पागल-सी बातें करते हो ,
लखकर इसकी नींद घोर-तर क्या मन-ही मन डरते हो ?
थक कर सोया हुआ लाल है !'
हरिश्चन्द्र— 'फिर क्यों यहाँ उठा लाई ?'

शैव्या—'हाय देव ! मैं ही पगली हूँ, नियति यहाँ तक ले आई !
कौन नियति ! मैं पुत्र गँवा कर, आई हूँ करने शव-दाह,
माँ आई है लिये लाड़ले को मरघट पर, अन्तक आह !
नाथ ! समय हो गया व्यवस्था करो इसे मैं दग्ध करूँ;
चिता जला कर उसकी ज्वाला में जीवन-भर जल्द-मरूँ !'
हरिश्चन्द्र—'शैव्ये ! मैं हूँ दास, कर रहा हूँ मरघट की रखवारी,
बिना लिये 'कर' कैसे दूँ मैं काष्ठ, हाय ! है लाचारी।
पुत्र-शोक से हृदय फटा पड़ता है, सर चकराता है !
पर इस समय एक प्रहरी-सा मेरा-तेरा नाता है।
बिना लिये 'कर' कभी न दूँगा करने शव का दाह तुझे,
भली-भाँति कर्तव्य-धर्म ने रक्खा है हा ! बाँध मुझे।'
शैव्या—'देव ! लाल की ओर निहारो, बनो न निष्ठुर हे भगवान !
क्या रोहित है नहीं तुम्हारी एकमात्र प्यारी सन्तान ?'
हरिश्चन्द्र—'सब सच है, पर बिना लिये 'कर' दग्ध न करने मैं दूँगा,
पड़ कर प्रेम-जाल में वंचकता का पाप न मैं लूँगा !
बस, 'कर' के पैसे दे दो फिर इसकी क्रिया करो रानी !
सब कुछ जाय धर्म की रक्षा सदा करूँगा कल्यानी !'
शैव्या—'निर्मम ! मैं दरिद्र-महिला, पैसे तुम कहो, कहाँ पाऊँ ?'
हरिश्चन्द्र—'कर' दो, शव का दाह करो, पैसे की क्या मैं बतलाऊँ ?
देवि ! अन्त तक धर्म नहीं छोड़ूँगा—चाहे जो हो जाय,
कफ़न फाड़ कर दे डालो, है यही एक बस, सहज उपाय !'
शैव्या—'दग्ध करूँगी मग्न लाल को, ले ले तू 'कर' अरे कठोर;
गत देखो तारे, निनिमति अपलक आँखों से मेरी ओर !'
ज्येष्ठ शु० ५, ८३ वै०]

तपोवन

मुक्तवृत्त

अहो तपोवन !

प्रकट हुआ था तेरे कोमल, सुखद अंक में
किस अनादि के आदि काल में
वेद-विहित आर्य-जीवन ।

जब इस जनाकीर्ण वसुधा पर
गगन विचुम्बित-रत्न-खचित वपा,
तृण निर्मित भी एक उटज न था,
तेरी सुखद, स्निग्ध छाया में
गूँज उठा था तब, दिगन्त को
मुखरित करके ॐकार-नाद
भरा हुआ था उस पवित्र स्वर से
उद्दाम पवन,
अहो तपोवन !

वेद-उपनिषद् नहीं बनाये गये
किसी जनपद-उपवन में
प्रत्युत होम-धूम धूसरित विटप के नीचे ही
ऋषियों ने इनको प्रकटाया—
—ज्ञान-उदधि का कर मन्थन,
अहो तपोवन !

'मा भैः' का हुंकार यहीं से सुना चकित हो
तीन लोक ने ।

'सोऽहम्' का रहस्य-उद्घाटन हुआ यहीं पर
'मा निषाद' के बाद यहीं पर मेघ-मन्द्र-सा
ध्वनित हुआ है आदि-काव्य का अमर अनुष्टुप;
यहाँ नहीं घुस पाये थे
विभेद, संघर्षण
अहो तपोवन !

रक्षित थी प्राचीन सभ्यता
इन्हीं वृक्ष-वल्लरियों के नीचे
'वीत-राग-भय-रोष' यहीं के
थे अधिवासी,
हो जाता था विमल मुकुर-सा यहीं पहुँच कर
कोटि-जन्म का महा मलिन मन,
अहो तपोवन !

कर्म-उत्स भी प्रथम प्रवाहित हुआ यहीं से,
नहीं धर्म की सुदृढ़ शृंखला बनी यंत्र-शाला में !
आया था ऋतुराज
भिखारी बन कर
यहीं रूप का भीख माँगने ।
स्नेह-कोकिला कूक उठी थी पंचम-स्वर में,
प्रथम-पूर्णिमा की विभावरी विहँस पड़ी थी
इसी तपोवन में

तपोवन

मुक्तवृत्त

अहो तपोवन !

प्रकट हुआ था तेरे कोमल, सुखद अंक में

किस अनादि के आदि काल में

वेद-विहित आर्य-जीवन।

जब इस जनाकीर्ण वसुधा पर

गगन विचुम्बित-रत्न-खचित क्या,

तृण निर्मित भी एक उटज न था,

तेरी सुखद, स्निग्ध छाया में

गूँज उठा था तब, दिगन्त को

मुखरित करके ॐकार-नाद

भरा हुआ था उस पवित्र स्वर से

उद्दाम पवन,

अहो तपोवन !

वेद-उपनिषद नहीं बनाये गये

किसी जनपद-उपवन में

प्रत्युत होम-धूम-धूसरित विटप के नीचे ही

ऋषियों ने इनको प्रकटाया—

—ज्ञान-उदधि का कर मन्थन,

अहो तपोवन !

'मा भैः' का हुंकार यहीं से सुना चकित हो
तीन-लोक ने।

'सोऽहम्' का रहस्य-उद्घाटन हुआ यहीं पर
'मा निषाद' के बाद यहीं पर मेघ-मन्द्र-सा
ध्वनित हुआ है आदि-काव्य का अमर अनुष्टुप;
यहाँ नहीं घुस पाये थे
विभेद, संघर्षण
अहो तपोवन !

रक्षित थी प्राचीन सभ्यता
इन्हीं वृक्ष-वल्लरियों के नीचे
'वीत-राग-भय-रोष' यहीं के
थे अधिवासी,
हो जाता था विमल मुकुर-सा यहीं पहुँच कर
कोटि-जन्म का महा मलिन मन,
अहो तपोवन !

कर्म-उत्स भी प्रथम प्रवाहित हुआ यहीं से,
यहीं धर्म की सुदृढ़ शृंखला बनी यंत्र-शाला में।
आया था ऋतुराज
भिखारी बन कर
यहीं रूप का भीख माँगने।
स्नेह-कोकिला कूक उठी थी पंचम-स्वर में,
प्रथम-पूर्णिमा की विभावरी विहँस पड़ी थी
इसी तपोवन में

शकुन्तला ने गाया था प्रणय-गान
यहीं सिंह-शिशु से, वसुधा के
भावी-सम्राट-कर्ता
खेला करता था।

यहीं उमा ने पुष्प-भार-अवनता-लता-सी
नत होकर योगीश्वर के रक्त-कमल-से चरणों पर
उत्सर्ग किया था, स्नेह-सुधा से सिक्त
सुकोमल हृदय-कमल।

यहीं रति खो बैठी थी
अपना जीवन-धन
अहो तपोवन!

यहीं बिताया चार्वाक, कणभक्षी कणाद ने
अपना शैशव;
व्यासदेव का यही ललित क्रीड़ा का सुन्दर क्षेत्र था।

अखिल-विश्व के भावी का निर्णय
हो जाता था पर्णासन पर यहीं
ज्ञान, कर्म, साधन का था यह जन्म-स्थान
श्लाघ्य, पूज्य था यह अनन्त अम्बर के नीचे
भूत-दया का केन्द्र
शान्ति का जनक।

इस पापी के लिए कठिन है
अब तेरा पवित्र दर्शन
अहो तपोवन!

आँसू

हे मेरी आँखों के आँसू !
हे इस जीवन के इतिहास !
छलक पड़ो मत, रहो अन्त तक,
उमड़े इस दुखिया के पास ।
हे करुणा के चिन्ह !
अहो, अभिलाषा की नीरद-माला !
मत छलको है टँगी हुई,
तुम पर ही मेरी शुभ आशा ।
हृदय-वेदना के परिचायक !
निराधार के हे आधार !
अन्तस्तल को धोनेवाले !
हे मेरे सुमूक उद्गार !
हे मेरी असंख्य भूलों के
मूर्तिमान सच्चे अनुताप !
शीतल करते रहो सदा
इस दग्ध-हृदय का भीषण ताप ।
हे कितनी घटनाओं की स्मृति !
हे मेरी आँखों की लाज !
न जाने क्या तुम्हें छलकता देख
कहेगा क्षुब्ध समाज ?
कितने स्नेह, शोक के हो

उपहार-तुल्य तुम मेरे पास;
बात-बात में यों मत छलको
उठ आवेगा फिर विश्वास।
बल न उठे जिससे सहसा वह,
बना रहे सुखदायक शान्त;
रक्खा है प्रज्वलित प्रेम को
तुममें डुबा, अहो उद्भ्रान्त !
बार-बार इस नीरस जग को
अपना रूप न दिखलाओ,
उषा-काल के तारागण-से
इन नयनों में छिप जाओ।

हे मेरे इस जीवन-भर की
कठिन-कमाई ! छिपे रहो;
आवश्यकता नहीं तुम्हारी आई,
भाई, छिपे रहो।
नहीं सफाई देने की
बारी आई है, छिपे रहो;
नहीं झलक अबतक प्रियतम ने
दिखलाई है, छिपे रहो।
यों ही ढलक पड़ोगे तो
मिट्टी में मिल जाओगे यार !
'लोचन जल रहु लोचन कोना'
यही विनय है बारम्बार।

निर्माल्य से संकलित]

अनोखा प्यासा

दोहा

एक टारत न खरे रहैं, समुझाये समुझै न!
जल-थल रहि पीवत न तेहि, अजब पिआसे नैन ॥

वियोगी

कामना

माँ वीणा दे, तू न बजा,
टुट जायँ कहीं न उँगलियाँ;
भय है किंशुक सी- बन जायँ
न ये चम्पे की कलियाँ।
आ वसन्त के प्रथम दिवस को
मलयानिल ने खोला द्वार;
आया अलसाया निसर्ग ले—
मुकुलों का उदास-उपहार।
हुआ परम निस्तब्ध दो-पहर
सुनने को वह तेरा गान;
सुन कर जिसे बने जड़ चेतन
रवि राकेश, गले पाषाण।
तेरे स्वर से मिला, देवि! स्वर
इच्छा है कुछ गा दूँ मैं,
जग के अहंकार को स्वर-सुरधुनि
[illegible] आज बहा दूँ मैं।

वसन्त-पंचमी ८२]

चित्रकार

प्रथम-प्रभात उदय से लेकर,
अन्तिम-संध्या तक चुपचाप;
चित्र आँकने में निमग्न हो
तुम्हें न हर्ष, क्षोभ, संताप;
इस कवित्वमय-उपवन में
मलयानिल मन्द-मन्द आता;
अर्धस्फुटित नई कलियों का
नीरव-चुम्बन कर जाता।
अन्त-हीन पथ पर पंथी-दल,
दौड़ रहा है ले गुरु भार;
सीमा-हीन गगन में उसका
गूँज रहा है हाहाकार।
सिन्धु-गगन का जहाँ मिलन
होता है वहीं स्वर्ण-तरि पर—
—चढ़कर तिमिराच्छन्न देश को
चले भानु नीरव होकर।
आँको चित्र, अन्त में प्यारे!
इन्हें नष्ट मत कर देना;
अन्धकार-पूरित भविष्य की
भीत इन्हीं से भर देना।

१९२३ ई०]

विराट् गायक

मुक्तवृत्त

हे गुणवान् !

किस अनादि के आदि-काल से
तेरा अर्थ-हीन यह गान,
गूँज रहा है
जीवन के प्रत्येक अंश में
अन्त-हीन-अम्बर में ।
अशनि-नाद,
कर्म-कोलाहल,
मेघ-मन्द्र,
सागर-गर्जन,
खिले सुमन-सी हँसी,
और वर्षा-सा रोदन,
सुमधुर प्रेमालाप,
हो जाते हैं सभी लीन
तेरे स्वर-स्वर में
नीर-तरंग समान,
हे गुणवान् !

वृन्दावन में]

चित्रपट से—

[१]

संलाप

बोल-बोल क्यों मौन
स्वप्न-सी; छाया-सी; सुषमा सी ;
कवि की सुखद कल्पना-सी ;
मुस्कान और उपमा-सी !
सुरसरि की तरंग माला पर ,
नृत्यमान शशिकर-सी
जीवन की गति-सी, नीरव रोदन-सी
अचल अधर-सी !

किस अज्ञात हृदय-धन का
करती हो नीरव आराधन ;
किस छलिया के हाथ
हारकर बैठी हो तन, मन, यौवन ?
किस अलक्ष्य को देख रही हैं
ये तेरी अपलक आँखें ?
किसके स्नेह-मधुर-मधु में
मधुकर की आज फँसीं पाँखें ?

किस सुदृढ़ की कुशल-तूलिका ने
बन्दिनी बना डाली ;
या इस नव कलिका को बरबस
छोड़ गया वह वनमाली ?
भय है शाप-ताड़िता तू वह
देवि अहिल्या हो न कहीं ;
क्या प्रिय-चिन्ता-मग्न-
चित्रवत् तू शकुन्तला, नहीं-नहीं !

फिर क्या यक्ष-प्रिया है, क्यों
अपने को यों खो बैठी है ;
जग से नाता तोड़ बता तू
अब किसकी हो बैठी है ?
फिर तू कौन, मरुस्थल की है
मृग-मरीचिका, माया-सी ,
या उस भुवन-मोहिनी की तू
परम मोहिनी छाया-सी ?

ऋतु-वसन्त की मलय-पवन-सी,
दुखिया की आशा-सी,
बोल-बोल तू कौन प्रेम-योगी की
अभिलाषा-सी ?
आह ! विश्व के युग-युग की
तू कौन साधना-सी है,
या वियोगिनी हर-कोपानल-दग्ध-
—पंचशर की है ?

आ, कवि की वीणा की
स्वर-लहरी पर जरा नृत्य कर जा ;
है अनुरोध हमारे इस
खाली प्याले को फिर भर जा।
कर प्रवेश कल्पना-लोक में
कविता-उरस प्रवाहित कर ;
एक बार अमृत—हैं ऐसी
भान; न हूँगा, प्रिये, अमर !

जीवन-मरण-भट्टियों में
अपने को खरा बना लूँगा ;
फिर तेरी इस रूप-राशि पर
निज को अर्पित कर दूँगा।
है अधिकार भानु का नयनों पर
मन पर मधुकर का ;
क्रूर समय का यौवन पर
तन पर उस काल अमर का।

धन, जन, पर है भाग्य-देव का
वाणी का रसना पर ;
तथा कल्पना पर तेरा,
भव के अधिकारी शंकर।
पर यह हृदय-हारिणी कविता
मेरी है— मेरी है
अतः हृदय के शब्द यही हैं
"तेरी है— तेरी है ।"

अनाघ्रात सुमनों की अंजलि ले
हाँ— बोल, बोल तो दे।
मेरे जीवन के प्रभात का बन्धन
खोल— खोल तो दे।
\+ \+ \+ \+
\+ \+ \+ \+
\+ \+ \+ \+
\+ \+ \+ \+

ले सुस्थिरता अम्बर से
पावनता ले सुमनों से ;
ले करुणा से सिक्त सुखद-
सहृदयता दीन जनों से।
लेकर रूप आदिकवि की
कविता से, गुण वसुधा से ;
ले अमरत्व स्वर्ग से, शिव से,
सुर से, सत्य, सुधा से।

ले मनसिज से मादकता,
कोमलता इन्दीवर से;
ऋतुपति से यौवन
सोहाग, सुख छीन रमा के कर से।
ले प्रभात से प्रभा, सुधाकर से
शीतलता, शान्ति अपार;
लज्जावती-लता से लेकर
लज्जा का सुमधुर-उपहार।

यहाँ हुई अवतीर्ण ग्रहण कर
रेखाओं का सुस्थिर भेष;
धन्य कला यह, जिससे सीमित
हुआ आज सौन्दर्य अशेष।
आ उस शुष्क चित्रपट से
इस निभृत प्रेम-आदर-घर में
हो विकसित जीवन-सुवास ले
जलज सरिस अन्तर-सर में।

मेरे भावों के निकुंज में
हो वसन्त का प्रादुर्भाव;
अश्रुकणों के पत्र झरें,
मलयानिल का वह रम्य प्रभाव।
कोयल बने भारती मेरी
कूक उठे कविता-स्वर में;
उथल-पुथल मच जाय
गगन में, वसुधा में, अन्तरतर में।

नयन-वियोगी बने, बरौनी बनें
पंचशर के खर-तीर ;
ढके पड़े हों पलक-चक्र से
जल में क्षत-ज्वाला से धीर !
देख नयन की दशा हृदय, हा !
तड़प-तड़प रह जाता हो ;
तेरा ध्यान सुधाकर स्मृति के
अंगारे बरसाता हो ।

प्राण बने चकोर जीवन अम्बर में
आह ! धूलि छा जाय;
चिर-संगिनि—गायिका निराशा
आ वैराग्य-गान गा जाय ।
तेरे प्रेम-देव के मन्दिर पर मैं
अलख जगा धाऊँ ;
जिससे उसका आसन हिल
जावे, मैं वही गीत गाऊँ ।

निकल पड़े यदि बाहर
अपना कम्पित कर फैला दूँगा ;
जो यह हँसकर मुझे भीख
देगा वह रोकर ले लूँगा ।

\+ + + +
\+ + + +
\+ + + +
\+ + + +

तू मेरी है वह वीणा, जो बजती है
करुण स्वर में ;
तू मेरी है वह आशा, जो
जागृत है उर-अन्तर में।
तू मेरी है वह अभिलाषा
है जो साधन का आधार ;
तू मेरी है वह प्रसन्नता
है जो सुख का पारावार।

तू मेरी है वह सुन्दरता
है जो जीवन ज्योति समान ;
तू मेरी है वह कलिका
है जो सुमनस की गौरव-खान।
तू मेरी है वह विभावरी
जिसे सुकवि करते हैं प्यार ;
तू मेरी है वह संध्या
है जो अम्बर का शुभ शृंगार।

तू मेरी है वह निहारिका
जिससे होता जग निर्माण ;
तू मेरी है वह वासन्ती वायु
विश्व का है जो प्राण।
तू मेरी है वह पीड़ा जो
तेरी याद दिलाती है ;
तू मेरी है वह उसास, जो
पत्थर को पिघलाती है।

बोल—बोल है शलभ खड़ा,
ऐ दीपशिखे! कुछ भी तो बोल;
हो जाऊँ पल में न्योछावर
हा-हा तनिक पलक तो खोल।
हो जाता नीरस जीवन वसुधा का
यदि होता न वसन्त;
होता जो न चन्द्र तो रजनी के
यौवन का होना अन्त।

होती जो न लतायें तो
दिखलाते वृक्ष वियोगी-से;
होते जो न कहीं पादप तो
गिरि दिखलाते योगी-से।
होती जो न कहीं चपला तो
मेघ धुम्र-सा दिखलाता;
होता जो न ग्रीष्म तो जीवन
जीवन का पद क्यों पाता?

होता जो न प्रेम तो होता
हृदय मरुस्थल, क्रूर, मसान;
होती जो कविता न कहीं तो
होते हम-सब यंत्र समान।
मोर-चन्द्रिका-सी आँखें होतीं
यदि होता शील नहीं;
होता जो न अभाव इस तरह,
बढ़ती जग में चाह कहीं!

होता जो न "वियोगी" तो कह ?
करता कौन तुझे यों प्यार ;
होता जो न प्यार तो क्यों तू
करती उस पर अत्याचार ?
फिर आग्रह से तिरस्कार का
गँठ-बन्धन तक भी होता ;
मेरा भाग्य निराशा के पर्दे में
छिप न कभी सोता।

थी इच्छा क्या विधिदेव का
बाहर हो जग का कंकाल ;
रचा उन्होंने इसी काम के लिए
वियोग, प्रेम का जाल।
जिसमें फँस जाने ही से
बस, जीवन का निस्तार नहीं ;
यही सोचकर अपने तक को
करता था मैं प्यार नहीं।

किन्तु समय ने पलटा खाया
देखा तेरा सुन्दर चित्र ;
देखा उसमें रूप अनूठा
देखी उसमें प्रभा पवित्र।
आह, नयन ने, मन ने, सखा हृदय ने
भी विद्रोह किया ;
नव-वसन्त के मलयानिल ने
उन्हें पूर्ण साहाय्य दिया।

इन विद्रोही वीरों ने हलचल भी
खूब मचा डाली,
इनसे लड़ने में संयम का
हुआ तूण-अक्षय खाली।
जीवन को संग्राम-क्षेत्र में
परिणत कर ये शान्त हुए।
इधर भाव भी नीरवता का
त्याग परम उद्भ्रान्त हुए।

प्रकट हुए वे दूती बनने के हित
ले कविता का, भेष,
सुनना प्रिये! कहेंगे वे ही
मेरी आहों का संदेश।

× × × ×
× × × ×
× × × ×
× × × ×

[२]

संदेश

सुनाया मलयानिल ने आज
जगत को ऋतुपति का संदेश ;
बढ़े सब मन्थर गति से मार
किया पालन प्रभु का आदेश !
हरण कर वल्लरियों की लाज
पुष्प-पल्लव से करके हीन ;
लूटकर हाय प्रकृति का कोष
बना डाला निर्मम ने दीन !

धरित्री की छाती पर किया
नाच कंकालों ने उद्दाम ;
धन्य है सहृदयता की मूर्ति
धन्य अधिकार, बड़ों का काम !
उसी निर्मम हाथों से आज
न मैं जो होता यों लाचार ;
लिखी जातीं न कभी, हे प्रिये !
पंक्तियाँ दर्द-भरी दो-चार।

न जब तक वीणा खाती चोट
निकलती नहीं मधुर झंकार ;
स्वाति की बूँदें पाकर कभी
न करता चातक आह ! पुकार।
वेणु में भरता जो न समीर
निकलती कैसे ध्वनि सुख-मूल ;
भ्रमर बल से यदि लेते नहीं
मधुर रस देते कैसे फूल।

न खाते झंझा का आघात,
बरसते तो कैसे घन नीर ;
न रोते चक्रवाक इस भाँति,
निशा जो करती नहीं अधीर।
कहो, क्यों आती वर्षा यहाँ
न जो तपता रवि से संसार ;
मथा यदि जाता नहीं समुद्र
प्रकटते कैसे रत्न अपार।

न होती सुधा, न होते चन्द्र
न होती कमला गुण की खान ;
न होते मृत्युंजय विख्यात
बचा कर भूतमात्र के प्राण।

\+ + + +
\+ + + ×
\+ + + +
\+ + + +

सँभल सकता है जग में कौन
समय की खाकर निर्मम मार ;
उसी के पद प्रवाह में आज
किया मैंने भी तुमको प्यार।
समझकर भी चकोर अंगार
चन्द्र उसको लेता है मान ;
समझकर दीप-शिखा को काल
शलभ उसमें देते हैं प्राण।

जानकर होने में अनजान
आह! मिलता है क्या आनन्द ?
मजा बन्दी-जीवन का भला
जान सकता है क्या स्वच्छन्द ?

\+ + + +
\+ + + +
\+ + + +
\+ + + +

प्रिये ! इस प्याला में मदिरा
ढाल दे, अब खाली हो चला ;
दीप के होने पर निर्वाण
स्नेह देकर होगा क्या भला ?
अभागी कोयल पर कर दया
छोड़ दे रहते सुखद वसन्त ;
अगर सुनना हो उसकी कूक
न कर उसके यौवन का अन्त ।

देखता है अटवी का स्वप्न
बन्द हो पिंजरे में खग दीन ;
न जाने क्या पाया आनन्द
नराधम ने उसका सुख छीन ।
कल्पना उसे सुनाती सदा
अहा ! निर्झर का सुमधुर गान ;
याद कर शस्य-श्यामला भूमि
विकल कर रोते होंगे प्राण ।

दूर तक फैली निर्जन खेत
सुनहली सिंचा का शृंगार ;
उषा का नील अरुण वह रूप
ओस-कण का सौन्दर्य अपार ।
भरा उज्ज्वल प्रकाश से गगन
भरी सरिता की चपल हिलोर ;
याद कर अब भी सुख की बात
कभी हो जाता आत्म-विभोर ।

किन्तु निर्मम सिकचों को काट
नहीं यह जा सकता है कहीं;
कल्पना हो जितनी स्वच्छन्द,
रहेगी उसकी मिट्टी यहीं।
सोच ले, बन्दी ने भी, प्रिये!
त्याग कर सुख, जीवन-आधार—
न त्यागा भावों का उन्मेष
न त्यागा करना जी-भर प्यार।

हृदय है अन्धकार में बन्द
घिरा पंजर से चारो ओर;
तड़पता ही रहता है सदा
भाव की खाकर मार कठोर।
नयन ने देखा तेरा चित्र
हृदय ने किया मचल कर प्यार;
बिका मन जाकर तेरे हाथ
और तन बैठा सब कुछ हार।

इसे कहते हैं प्रभु की मार
लुटा मन्दिर में आकर भक्त
हुआ रवि की किरणों पर आज
अभागा कंज हाय अनुरक्त!

× × × ×
× × × ×

वैशाख कृ० ५, १९८९

अग्नि और जल

दोहा

गुरुजन-चखन अँगार लखि, नेह-नीर भरि नैन
निधरक निसि-दिन मन्दसुत, धरति ध्यान सुखदैन

विद्रोही

सह दारुण आघात समय का
आह ! हृदय फट जाता है ;
इसी समय तू रक्त-भरे
चरणों से सम्मुख आता है।
हूँ उन्मत्त, सहेगा मेरा कौन
वज्र-सा आज प्रहार !
देव ! हटो मैं अब उठा हूँ
सह-सह तेरा अत्याचार।

जाना है, जाऊँगा; निश्चय—
जाऊँगा; आराध्य, चलो;
रे निर्लज्ज ! न माँग दया की
भीख; चलो, हो साध्य चलो।

रक्त-बूँद बतला देती है
यद्यपि पता शिकारी को ;
मेरे चरण-चिन्ह, पर, दहला देंगे
अत्याचारी को।

चैत्र कृ० १३, ८३]

मिथ्या प्रवंचना

वाह, क्या कहा ? तुके काँच के
पुतले इन चरणों पर ;
मोर-पुच्छ की आँखों से
उमड़ेंगे करुणा-निर्झर ।
क्या निकलेगी देव !
ऊष्ण निःश्वास भरी लालों से ?
हृदय तृप्त हो सकता है क्या
चूर-चूर प्यालों से ?

चम्पक-सुमनों पर भौंरों का
आह ! भाँवरें भरना,
याद दिलाता है कीचक का
सैरन्ध्री पर मरना ।

[चैत्र कृ० १२, ८२]

आशा

[१]

अरे, भस्म होगा चकोर
यह चन्द्र नहीं, है आग!
बार-बार आते पतंग
दीपक पर, फूटे भाग!
थी तेरी आशा छल-बल से
होंगे पाण्डव नाश;
पर कृष्णा की मूक आह के
बने स्वयम् ही ग्रास।

बहुत दिनों से व्यर्थ पड़ी थी
आई इसकी बारी;
चमकेगी मेहँदी वाले हाथों में
आज कटारी।

[२]

रंग-बिरंगी छवि वाली
नागिन हैं, नहीं खिलौना ;
ये नन्हें प्यारे-प्यारे हैं देख—
सिंह के छौना ।
यह पतली चमकीली
क्या है ? बिजली-सी तलवार ;
फाँसी है, यह नहीं प्रेयसी के
फूलों का हार ।

आशा थी तू सँभल गया
पर तुला आज मिट जाने को ;
चला नमक का पुतला भय
सागर की थाह लगाने को ।

चैत्र कृ० १५, ८३

अद्भुत प्यार

धन्य है तेरा अद्भुत प्यार !
ले अशान्ति का रूप अन्त में देते शान्ति अपार।

मिथ्या उपकरणों को लेकर,
तन-मन-जीवन सब कुछ देकर,
कल्लोलित सागर के तट पर,
बड़े यत्न से भीति बालु की करता हूँ तैयार,

उसे नष्ट तू कर देता है,
सुख की निद्रा हर लेता है,
क्या अनुपम उदारचेता है!
रोकर कर लेता हूँ हल्का, हाय! हृदय का भार!

सह कितने परिताप घोरतर,
साहस-पूर्वक, देव! धैर्य धर,
श्रम से काष्ठखंड संग्रह कर,
तरी एक प्रस्तुत करता हूँ जाने को उस पार।

डाल सिन्धु में जब देता हूँ,
स्वयम् डाँड़ कर में लेता हूँ,
गर्व-भरे मन से खेता हूँ,
उसे मग्न जल में तू कर हर लेता है आधार।

अन्धकार जब छा जाता है।
हाथों हाथ न दिखलाता है,
छिपकर तू सम्मुख आता है,
फिर मिल जाता रवि-किरणों में, हँस उठता संसार।

जिसे ग्रहण करता अपना कह,
रखता जिसे हृदय में दुख सह
तृप्त जिसे करता अतृप्त रह
मुझसे छीन उसे तू करता नए ठोकरें मार।

आशाओं का वृक्ष लगाया,
नयन नीर से सींच बढ़ाया,
जब बसन्त उपवन में आया,
तोड़ डालियाँ डालीं लेकर झंझा का अवतार।

निराधार अतृप्त बनाकर,
सब आमोद-प्रमोद हाय! हर,
अन्तर में अनन्त रोदन भर,
करके भली भाँति वसुधा में निःस्व और लाचार।

हृदय से, हे हरि! अन्तिम बार,
लगा लेगा तू बाँह पसार।
पता चला न "वियोगी" तेरी लीला अपरम्पार।

धन्य है तेरा अद्भुत प्यार!

फाल्गुन शु० ७,८३

देव-अर्चा

देव ! गया तेरे उपवन में
जहाँ खिले थे फूल अनेक;
सुन्दरता, सुवास में वे थे
बढ़े मनोज्ञ एक-से एक।
"किसे तोड़ लूँ, किसे छोड़ दूँ"
ठीक नहीं कर पाता था;
इधर समय पूजा का
इस झगड़े में बीता जाता था।
प्रातः की सुषमा परिणत हो गई
उदास दुपहरी में;
हुआ बहुत कुछ परिवर्तन
उस वीणा की स्वर-लहरी में।

फिर संध्या ने जवा-कुसुम ले
दिवस-नाथ को अर्घ्य दिया;
रत्नाकर ने बढ़कर अपने
प्यारे शशि को चूम लिया।
मुकुलित जलज कोष में बन्दी
हुए रसिक अलि ही निरुपाय;
चुन न सका प्रभु की पूजा के
लिए सुमन मैं तो भी हाय!
लौट चला, पर पाँव नहीं उठते थे
थी लज्जा, था भय;
किस मुहँ से मैं जाऊँगा
क्या देख कहेंगे करुणामय?
थी गम्भीर निशीथ, निशापति
नभ-मंडल में सोते थे;
चित्रित पंखों में पक्षी
सिर छिपा वृक्ष पर सोते थे।
सुनकर अपने ही पैरों की ध्वनि
मैं डरता जाता था;
फिर अपनी इस घोर भूल पर
मन-ही-मन पछताता था।
ज्यों-त्यों कर पहुँचा भाता
मन्दिर के सिंह-पौर के पास;
खड़ा हो गया हृदय थाम कर
दबी रह गई ऊँची साँस।

द्वार खुले थे, वीणा की द्रुत-गति-
सा भीतर घुसा सशंक;
देख न कोई कहीं मुझे ले
था इसका मिथ्या आतंक।
सिंहासन के पास पहुँचकर
झटपट लिया प्रदीप जला;
देखा, देव नहीं है; यह क्या !!!
खोजा, किन्तु न पता चला !
दो फूलों के लिए गँवा डाला
सर्वस्व, मूर्ख ! धिक्कार !
यही भक्ति का गूढ़ तत्व है ?
यही देव-अर्चा का सार ?
मैंने चाहा था मिथ्या से
बाँध सत्य को लूँगा;
नहीं ज्ञान था भाग्य-दोष से
दोनों को खो दूँगा !
मिथ्या तो है स्वप्न,
सत्य को भी यों हीं खो डाला
एक साथ क्या रह सकते हैं
रजनी और उजाला ?

फाल्गुन शु० ७, ८३]

विश्वाधार !

देव ! बुलाते हैं कृष्णा के
खुले हुए ये केश तुम्हें;
सुनो, पुकार रहे हैं सीता के
आँसू सर्वेश तुम्हें !
कुन्ती के हृदय स्पन्दन में
छिपकर नीरव हाहाकार—
तुम्हें पुकार रहा है—'आ जाओ'
अब विमुख हुआ संसार !

वासव खड़े, शची लुटती है
बारी आई रोने की;
छू पारस हाथों से क्या
तलवार हो गई सोने की ?

गया से कलकत्ता (रेल पर)
१—४—२७

आकांक्षा

जीवन के तम में ध्रुव बनकर
अमर ज्योति तू फैलाना,
भाव कुंज में सुमनस हो
कोमलता-सुमन खिला जाना।
भर देना इस क्षुद्र बाँस की
बंशी को अपने स्वर से,
और क्रूरता का कठोर पत्थर-सा
हृदय हिला जाना।
सावन के घन-सा छा जाना
ग्रीषम-ताप मिटाने को,
चातक पर कर दया नीर की
बस दो बूँद पिला जाना।
युग-युग से मस्तक पर हिम
धारण कर नगपति क्षुब्ध हुए,
मेरी आहों की गर्मी से
उसको अब पिघला जाना।
अधिक दूरता अखर रही है
है यह अन्तिम चाह विभो!
बन दिग्चक्रवाल वसुधा से
नभ से आज मिला जाना।

वैशाख कृ० १०, ८४]

अव्यापकता, व्यापकता

द्वार बन्द है, अन्धकार में व्याकुल
समय बिताता हूँ।
अपनी ही श्वासों से,—
हृत्कम्पन से मैं भय खाता हूँ।

विश्वदेव का आज अतीन्द्रिय
है विराट्-सौन्दर्य अशेष,
आँखों से है ओट स्वप्न-सा
माधव का मनमोहन भेष।

नहीं जानता सुमन खिले कब
मधुपों ने मधुपान किया
राजकीय आलस्य अनिल ने
बोलो कहाँ बिखेर दिया।

नहीं जानता किया सचेतन-
-स्पर्श किसे तेरे कर ने,
चला कौन पागल छन्दों से
नीरव नभ-मण्डल भरने।

स्वागत है ग्रीष्म का, आया
माया-जाल हटाने को,
स्वागत है अन्तक आया
जीवन का अलख जगाने को।

देव ! खोल दे द्वार, उषा से
आँखें आज मिलाने दे,
प्रौढ़ विश्व के शैशव-युग का
गान मनोहर गाने दे।

अन्धकार में केवल अपने को
मैं देख रहा हूँ नाथ !
जहाँ दृष्टि रहती अव्यापक
भय रहता प्राणों-सा साथ।

जब तू द्वार खोल देगा
भव किरणों में होगा सम लीन,
आवेगा नूतन बन मेरे
नयनों के आगे प्राचीन।

देख प्रकृति की प्रकृत छटा
मैं उसे करूँगा जी-भर प्यार
कर मेरे अन्तरान्तर की जड़ता
का तू सत्वर संहार।

वैशाख कृ० ११, ८४]

गल्प

हे अतीत ! हाँ, सुना हमें भी
अश्रुधौत निर्मल इतिहास
सुना रक्त-रंजित युग की
गाथा, मानवता का उपहास !

भ्रमण करा कल्पना-लोक में
जाग्रत-स्वप्न दिखा देना,
गागर में सागर भरने की
नूतन रीति सिखा देना।

काल-स्रोत में सदा सुमन-सा
जीवन बहता जाता है
और पहुँचकर गल्प लोक में
फिर वह सम्मुख आता है।

नहीं देखता शिशु-जग भय से
निर्मम वर्तमान की ओर
सुनता है वह हृदय थाम कर
गाथायें, हो आत्म-विभोर।
यही अवस्था तो शैशव का
कोमल-चिन्ह मात्र है शेष,
अतः अतीत! कहानी कह, हो
जिससे नूतनत्व उन्मेष।

सौरभ से हों भाव और
सुमनों से चुने शब्द हों अल्प।
सुना-सुना, सोने के पहले
हे अतीत! तू ऐसी गल्प।

वैशाख शु० 1, ८४]

आगमन

दूर-दूर, हाँ, दूर हटा ले,
सुरभित सुमनों की डाली
रख दे अपनी भुवन-मोहिनी
बाँसुरिया हे बनमाली !
देव ! हटा ले सुख-सपना
ले अपनी भी तू हटा, प्रभात !
हे विभावरी ! तू अशान्त है,
हो जा शीघ्र अमा की रात !
लगा न नीलाम्बर में गोटे
संध्ये ! उषे !! सुनहले, लाल,
मत बिखरा दे मरकत-सी
महि पर नयनाभिराम गुलाल ।
विश्व ! तोड़ दे अपने संख्यातीत
बन्धनों का वह जाल;
उठें न जीवन-सागर में
कर्मों की अब लहरें उत्ताल ।
गायक ! बस रख दे वीणा,
मत गावें उरस मनोहर गान;
मिल जावें अनन्त में जाकर
जग के पतन और उत्थान ।
शान्ति ! शान्ति !! हो महाशान्ति !! अब द्वार खुला, खुल जाने दे;
वीणापाणि कल्पना-मन्दिर से आती हैं, आने दे ।
माघ, वसन्त-पंचमी ८३]

चोर

आया, वह आया, ऋतुपति-सा
वन-वन में छिपता आया;
आया, वह आया, प्राणों-सा
तन-तन में छिपता आया।
आया, वह आया, मनोज-सा
मन-मन में छिपता आया;
आया, वह आया, तुम-सा ही
जन-जन में छिपता आया।
नहीं छा गया जीवन-नभ में
घुमड़ मनोहर घन-सा;
अरे! हृदय में चुपके-से
आ छिपा कृपण के धन-सा।

फाल्गुन कृ० ३, ८३]

विदा

जब तेरी इस भरी सभा में
मलयानिल-सा मैं आया ;
खोल दिया अपने भविष्य को
जिसे बन्द कर था लाया।
कहाँ बन्द कर ? क्षुद्र मुट्ठियों में
वह बन्दी था लाचार ;
खुलते ही उसने झट नूतन
किया एक जग आविष्कार।
उसमें कोलाहल के द्वारा
हुआ प्रेम से मैं आहूत ;
'अस्ति' 'नास्ति' भी हुई शीघ्र ही
संघर्षण के साथ प्रसूत।

उषा-सुन्दरी ने मेरे
ललाट को चूमा हँस-हँस कर ;
फूले नहीं समाये तरु
परिमल सौरभ ले, गया बिखर।

रत्नाकर ने मुझ अजान पर
रत्नाकर उत्सर्ग किया ;
उन्हें चन्द्र ने चुन-चुन कर
नभ-वितान में लगा दिया।
इस प्रकार घर के धन की
रक्षा भी हुई, बन गया काम ;
चमक रहे हैं अब भी वे ही
तारे बन कर शोभाधाम !

\+ + + +

मिला स्वर्ग-सुख मुझे और
महिपालों-सा सम्मान मिला;
कवि-कल्पना समान कामिनी
मिली, विलक्षण ज्ञान मिला।
पर तेरी जब सभा-भंग
हो गई और मैं लौट पड़ा;
खुली मुट्ठियाँ थीं मेरी
था एकाकी निरुपाय खड़ा !

हरे ! निःस्व के विदा-समय में
मेरा नहीं आडम्बर था;
अश्रु-भरे अनेक नयनों का
केवल आकर्षण-भर था !

फाल्गुन कृ० ११, ८२ वै०]

अन्तिम विनय

पश्चात्पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परिपाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्नेमर्त्यां अमर्त्यस्त्वं नः ॥
—अथर्व

एक झंकार

प्रार्थना

हे गायक! मैं भी गाऊँगा
मुझे सिखा दे ऐसा गान;
तीनों लोक काँप जायें सुन कर
चल-दल के पत्र समान।
टपक पड़ें फल-से ध्रुव, रवि, शशि,
होकर पागल चले समीर;
अम्बर को छू ले बढ़-बढ़ कर
सागर हो उन्मत्त—अधीर।
बहे हिमालय गलित मधुज सा
मचे विश्व में हाहाकार;
करें शेष फुत्कार और
दिग्गज व्याकुल होकर चीत्कार!
स्रष्टा की सब सृष्टि स्वप्न-सा
पल में होवे अन्तर्धान;
प्रलयंकर विराट गायक!
तू मुझे सिखा दे ऐसा गान!

उद्बोधन

कवि ! यह देखो, विश्व
भानु के रँगा रंग में, उठो-उठो;
उदय-मंत्र से स्फूर्ति जगा दो
अंग-अंग में उठो-उठो !
यह लो जादू-भरी लेखनी
गागर में सागर भर दो;
खींच शब्द-मय चित्र अग्नि का—
भाषा में सम्मुख धर दो ।

भाव-लोक के अहो विधाता !
हृदय-कुंज के सुखद-वसन्त !
हे कवि ! सदियों की नीरवता का
लो वीणा, कर - दो अन्त ।

चैत्र शु० (अधिक) ९, ८२]

कवि

क्लीवों के शरीर में भी खौल उठता है खून ,
त्योरियाँ बदलती हैं, जोश चढ़ जाता है ।
लेकर हथेली पर जान बढ़ता है वीर ,
हारी हुई बाजी को तुरंत पलटाता है ।

१७. वियोगी

होने लगता है प्रलयंकर का नग्न नृत्य,
नाश का कलेजा भी कली-सा थहराता है।
तीनो लोक चूमने अँगूठे लगते हैं तेरे,
कवि! तू सगर्व जब लेखनी उठाता है।

पढ़कर तेरी एक ओज-भरी कविता को,
कर्मवीर चारो ओर आग लगा देते हैं।
जीवन की जीर्ण-शीर्ण नैया को अभय होके,
अन्तहीन पारावार में वे सदा खेते हैं।
तेरी ही दया से धन-बुद्धि-गुण-कर्म-हीन,
कितने अधीन दीन आज-कल चेते हैं।
कारण यही है, है गुलाम तेरा सारा विश्व,
बड़े-बड़े तेरी लेखनी को चूम लेते हैं।

कवि! तुम गौरव स्वदेश के, स्वभाषा के हो,
भावुकों के जीवन हो, यौवन हो, तन हो।
सखा दलितों के, पतितों के, दीन दुर्बलों के;
मूकों के मनोरथ हो बोलती हो, जन हो।
वीरों के भयंकर परिश्रम हो, साहस हो,
प्रेमियों के प्रेम हो, महानता हो, मन हो।
कविता के प्यारे हो, स्वयम्भू हो, स्वतंत्र भी हो,
जग के दुलारे और भारती के धन हो!

श्री रामनवमी ८९]

मोहन !

छोड़ प्रिया का सुखद कर,
चक्र-सुदर्शन धार;
सेनापति बनकर करो,
नवजीवन-संचार।
छोड़कर साथ गोपियों का, पीत-पट फेंक,
पहन सनाह समर-स्थली में आइये।
मोहन ! हृदा के मन-मोहन स्वदेश अब
जग को प्रलय का रुद्र रूप दिखलाइये।
भूलकर भैरवी-धनाश्री की मधुर तान
गीता के अनुष्टुपों से आग बरसाइये।
पांचजन्य लेके दहला दें रिपुओं का दिल,
कुँवर कन्हैया मत मुरली बजाइये।

राम !

चाहता विभीषण-सा लेना नहीं राज्य-सुख,
चाहता नहीं मैं मुनियों सा जपूँ तेरा नाम।
चाहता नहीं मैं हनुमान-सी अनूठी भक्ति,
चाहता नहीं मैं कपिराज-सा निकालूँ काम।
चाहता नहीं मैं दशरथ-सा अचल प्रेम,
चाहता नहीं मैं पाऊँ गृद्ध-सा परम-धाम।
चाहता हूँ केवल अछूत कैवर्त्त-सा ही,
धो लूँ एक बार तेरे पावन पदों को राम !

पौष सु० १०, ८२]

रामायण और तुलसी

'चन्द्र' हुए जब अस्त तत्क्षण
'सूर' की शूरता हो गई फीकी ।
'केशव' के जब भक्त-समाज की
पूरी हुई नहीं लालसा जी की ।
तृप्ति हुई सुनके न कहानी
'लक्षी'—हरि की विपरीत रती की ।
राम-कथा मिस मानस में
तब पूजी गई प्रतिमा तुलसी की ।

श्रावण शु० ७, ८२]

चन्द्र-खेलौना

'माँ, क्यों मुझको चन्द्र-खेलौना लगता प्यारा ?
जाता उसकी ओर नहीं क्यों ध्यान तुम्हारा ?'
सुन बच्चे की बात कहा माँ ने यों हँसकर—
—'लाल ! प्यार करती थी मैं भी उसको जी-भर,
अब क्यों भूलूँ दूर के, शशि के क्षणिक विनोद में,
खेल रहा है चन्द्र-सा, जब तू मेरी गोद में।'

स्तवन

मुक्तवृत्त

हे योगीश्वर !

अटल ध्यान धर
देख रहा है किसे नयन-भर,
किस अव्यक्त रूप को
करना शीघ्र चाहता है तू व्यक्त ?
सारा जग तेरी ही ओर
होकर आत्म-विभोर
देख रहा है हृदय थाम कर
हे योगीश्वर !
कर्मचक्र का नभ भेदी स्वर
भंग नहीं करता क्या तेरा ध्यान ?
क्या न पहुँचता है तेरे कानों तक
इस 'कवि' का यह मर्मस्पर्शी गान ?
हे योगीश्वर !
कोटि-कोटि भूखे बच्चों का सुनकर
हाहाकार
रोता नहीं हृदय क्या तेरा
कैसा है वह हाय ! कठिनतर,
हे योगीश्वर !

१ श्रावण शु०, १९८२ वै०]

उपसंहार

समय कह रहा है,—बतला दे
अपनी व्यथा—कथा सारी;
भय है सुनकर कहीं न रो दें
ये अँखियाँ प्यारी-प्यारी।
छिपी हुई है—'कुहू'-'कुहू' में
कोयल के अन्तर की दाह;
है अव्यक्त 'पी-कहाँ' में
चातक के जी की कचट अथाह।

इन कविताओं में मेरा है
हृदय छिपा, खोजो हे प्राण!
मेरे उदासीन जीवन का
कर लेना कारण-सन्धान!

The mind is its own place and can make
a hell of heaven and a heaven of hell.

MILTON.

'एकतारा'-रचयिता की दूसरी रचना

निर्माल्य

पर

लब्धकीर्त्ति कवियों, लेखकों, विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओं

की

सम्मान्य सम्मतियाँ—

Dr. Sir Rabindranath Tagore's Private Secretary—

"Dr. Tagore sends his best thanks for the copy of your book of Verses—Nirmalaya. He is impressed by the use you have made of *new meters* and *rhyme-combinations* in your poetry. The book is being sent on to our library where they will be read with interest by our scholars working on Hindi literature".

Mahamahopadhyaya Dr. Ganganath Jha, M. A., D. Lit., Vice-Chancellor—Allahabad University—

"Many thanks for the copy of 'Nirmalaya'. It is refreshing to find *a young poet beating out a new path* for himself and succeeding therein. I have read the poems with great interest".

बिहार के सर्वमान्य नेता श्रीराजेन्द्रप्रसादजी, एम. ए., एम. एल.—प्रायः आद्योपान्त पढ़ गया; कुछ अंशों को तो एक बार से अधिक। हिन्दी-कविता में एक बड़ा परिवर्तन होता दीख रहा है—'निर्माल्य' भी उसमें सहायता पहुँचा रहा है। भाव और भाषा में सामंजस्य है। अनेक स्थानों पर भाव और भाषा—दोनों—का ही बड़ा उत्कर्ष है। जहाँ कोमलता की आवश्यकता है, वहाँ कोमलता भी पल्ले दर्जे की है।

साहित्याचार्य प्रोफेसर रामावतार शर्मा, एम० ए०—सब कवितायें मौलिक रचनायें हैं, बड़ी मधुर हैं—भाषा सरल और हृदयहारिणी है; छन्द और रीति विशुद्ध हैं। आबाल-वृद्ध सबके पढ़ने योग्य है।

रायसाहब प्रोफेसर श्यामसुन्दरदासजी, बी० ए०—'निर्माल्य' प्राप्त; स्थान-स्थान पर उसी समय पढ़ गया। कविता बहुत ही सुन्दर, मधुर और भावपूर्ण है। बधाई!

साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'—अधिकांश रचनायें सरस और सुन्दर हैं। भावुकता प्रशंसनीय है। आप एक उदीयमान सुकवि हैं। विश्वास है, आप हिन्दी-संसार में यथेष्ट कीर्ति लाभ करेंगे।

कविवर पं० श्रीधर पाठक—इन रचनाओं में आपकी उदीयमान प्रतिभा प्रचुरता से अपना प्रकृत परिदर्शन दे रही है।

कविवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त—मैं तो आपकी रचनाओं को बहुत पसन्द करता हूँ। "निर्माल्य" आपके योग्य ही हुआ है। यह पवित्र तो निर्माल्य ही की तरह पर है; टटकी चीज है। बधाई।

कविवर ठाकुर गोपालशरणसिंहजी—इन कविताओं को पढ़कर यह कोई नहीं कह सकता कि आपको एक कवि का हृदय नहीं मिला। आपकी रचना सुन्दर और सरस होती है—भाव गम्भीर और मनोहर होते हैं। आध्यात्मिक कविता लिखने में आपको अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। आपकी रचनायें मुझे बहुत पसन्द आईं।

प्रोफेसर पंडित अक्षयवट मिश्र 'कवि विप्रचन्द'—प्रसाद-स्वरूप 'निर्माल्य' भली भाँति पढ़ लिया। अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ। इसमें अनेक प्रकार की कवितायें हैं, जिनसे आपकी प्रखर प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है। इसके पाठ से जी नहीं ऊबता—लालसा बढ़ती ही जाती है। यह आपके हृदय का प्रतिबिम्ब है। आशा होती है कि आप थोड़े ही दिनों में बिहार के एक परम प्रसिद्ध कवि हो जायँगे। इस ग्रंथ के रखने से पुस्तकालय की शोभा बढ़ेगी।

श्रीमान् कुमार गंगानन्द सिंहजी, एम० ए०, एम० एल० ए०—पं० मोहनलाल महतो का "निर्माल्य" उनकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक तथा उनकी स्वच्छन्द आत्मा का आवरण है। उनका तृषित हृदय किसे सहानुभूति के सूत्र में नहीं बाँधेगा? उनका मधुर शैशव-गान किसके हृदय को द्रवित नहीं करेगा?

साहित्याचार्य पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री—श्रीयुत पं० मोहनलालजी महतो "वियोगी" अपनी कविता और काल्पनिक व्यंग्य-चित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। हमारे लिए यह निर्णय करना कठिन है कि इनकी कविता उत्तम है या चित्र। पर हम देखते हैं

कि जन-समाज का अनुराग इनकी कविता की ओर बढ़ रहा है। इनका "निर्माल्य" बहुत पसन्द किया गया है।

भूतपूर्व 'बिहारबन्धु'-सम्पादक पंडित प्रमोदशरण शर्मा—'निर्माल्य' एक अखंड-संयोगाकांक्षी वियोगी हृदय के भाव-कलित कुसुमों की छन्दःसूत्र में पिरोई हुई कमनीय माला है, जिसका प्रत्येक प्रसून विश्वाधार के पद-पद्म-पराग से पूत होने के लिए प्रस्फुटित हुआ है। 'निर्माल्य' के सुमनों में सुन्दरता है, अम्लानता है, सुवास है, आकर्षण है—और है 'बिना किसी आडम्बर के मिट्टी में मिल जाने की कामना !' पर, रसिक मधुपों में इतना आत्म-संवरण कहाँ कि ये उनके विविध गंध-रूप-रस के लोभ से विरत हो उनकी कामना पूरी होने दें ? तथास्तु।

कविवर पंडित किशोरीलालजी गोस्वामी—

हमसे सुसम्मति चाहते, आया निपुण "निर्माल्य" है।
अतएव यह अनुरोध सुन्दर सर्वथा परिपाल्य है।
यह काव्य उस कवि ने रचा, जिसका वय-क्रम बाल्य है।
सहृदय जनों द्वारा, हमारे जान, यह कृति लाल्य है।

कविवर पंडित रामनरेश त्रिपाठी—कविता सरल और नवीन भावों से अलंकृत है। भाषा सरल और सुहावनी है।

समालोचकाचार्य पं० पद्मसिंहजी शर्मा—यह देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि आप जैसे चतुर चितेरे प्रसिद्ध हैं, वैसे ही कुशल कवि भी हैं। आपकी चित्र-कला में व्यंग्य रहता है, तो कविता में भी बाँकपन है। आप कवि और चित्रकार दोनों हैं, इस विशेषता के लिए बधाई। 'निर्माल्य' की कवितायें मुझे पसन्द आईं। रचना सुन्दर है—स्थान-स्थान पर प्रतिभा का

परिचय मिलता है। भाषा साफ़—भाव समझ में आते हैं। छाया-वाद की कविता प्रायः पहेली के ढँग की होती है, और इसी लिए कभी-कभी नितान्त दुर्बोध "गूँगे की सैन" हो जाती है। पर 'निर्माल्य' की कविताओं का अधिकांश इसका अपवाद है। आपको छायावाद के विषम मार्ग में सफलता प्राप्त हुई है। बधाई !

लाला कन्नोमल, एम० ए०, दौरा जज, धौलपुर-स्टेट—संग्रह अच्छा है। पद-पद में कवि-प्रतिभा की झलक है। कविता सरल, सरस, सबोध, सुन्दर एवं सभाव है। इस उमर में ऐसी सुन्दर कविता का होना एक अनोखी घटना है। इसे हिन्दी-साहित्य में उच्च स्थान मिलेगा। कागज़, छपाई, जिल्द इत्यादि पुस्तक के बाह्य अलंकार हैं; पर असली सम्पत्ति है उसकी सरस और चमत्कारी कविता।

The 'Search-Light', Patna (June 30, 1926)

Pandit Mohan Lall is well-known to the readers of Hindi Magazines He is a writer of Verses and they are not of mean order The get up and printing of the Book are of high order

'मनोरमा', प्रयाग, (जुलाई, १९२६)—छपाई सफाई सुन्दर। हम इस पुस्तक को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। नवीन युग के कवियों में श्रीमोहनलाल महतो का एक स्थान है। आपकी प्रतिभा वास्तव में प्रखर और उच्च है। हमने इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ा। हम महतोजी को ऐसी सुन्दर रचना लिखने के लिए तहे-दिल से दाद देते हैं। हमें यह पुस्तक बहुत भाई। इसमें कुल ७६ छन्द हैं। प्रत्येक छन्द दार्शनिक

भावों से भरा है। पुस्तक बहुत सुन्दर छपी है। काव्य की दृष्टि से यह पुस्तक हिन्दी के वर्त्तमान काव्यों से अच्छा स्थान ग्रहण करेगी। छन्द प्रायः गाने से भी सम्बन्ध रखते हैं। हम हिन्दी वालों से सिफारिश करते हैं कि वे इस नवीन काव्य-ग्रन्थ को अवश्य देखें।

स्वनामधन्य श्रेष्ठ राष्ट्रीय साप्ताहिक 'प्रताप', कानपुर (४ जुलाई, १९२६)—हमें संतोष है कि 'निर्माल्य' की माला के कविता-कुसुमों का चयन अच्छे ढँग से हुआ है। कोई-कोई कविता तो बहुत ही अच्छी है। पागल का प्रलाप, सरिता का संगीत और अभिलाषा—आदि कवितायें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'सम्मेलन-पत्रिका', प्रयाग (कार्तिक, १९८३)—छपाई-जिल्द आदि बहुत सुन्दर। महतोभी रवीन्द्र के अनुगामी हैं। पुस्तक अत्यन्त उत्तम और हिन्दी-कविता-क्षेत्र की एक नई वस्तु है। मुक्तवृत्तों के अतिरिक्त कुछ सुन्दर कवित्त भी दिये गये हैं। कवि सहृदय हैं, कविता अति उच्च श्रेणी की है। 'निर्माल्य की-सी कवितायें हिन्दी-जगत में युग-परिवर्तन करने में सहायक हो सकती हैं। आशा है, 'निर्माल्य' की गिनती उन पुस्तकों में होगी, जिन पर खड़ी बोली कुछ अभिमान कर सकती है।

स्वराज्यवादी साप्ताहिक 'सैनिक', आगरा (११ अगस्त १९२७)—"वियोगी"जी व्यंग्य-चित्रों (कार्टूनों) द्वारा काफी ख्याति लाभ कर चुके हैं। 'निर्माल्य' में गाम्भीर्य, ललित शब्द-रचना, विषयों के चित्ताकर्षकत्व की विशेषता है। यों तो प्रायः सभी रचनायें सुन्दर हैं; किन्तु "इस पार से उस पार" शीर्षक कविता उत्कृष्ट भावापन्न और बहुत सुन्दर है। खड़ी बोली की

कविता के प्रेमी और छायावाद के अनुरागी जनों को इसे अवश्य देखना चाहिये।

'हृदय', मेरठ (१५ अगस्त, १६२६)—'निर्माल्य' की विशेषता इस बात से है कि उसके रचयिता महतोजी का काव्य-प्रेम स्वाध्याय-जनित है। 'निर्माल्य' को हमने पढ़ा—एक बार और दूसरे बार भी; हृदय को बड़ा संतोष होता है। वास्तव में हृदय की बातें हृदय वालों के लिए हृदय से लिखी गई हैं, और वह भी एक 'वियोगी' द्वारा! फिर संग्रह सुखकर क्यों न हो? छपाई, सफाई, कविताओं की सजावट हृदय हारिणी है। ईश्वर महतोजी को दीर्घायु करें जिससे हिन्दी को भी एक 'रवीन्द्र' पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त हो। यदि 'निर्माल्य' का नाम 'नैवेद्य' रखा जाता, तो अधिक मधुर और उपयुक्त होता; क्योंकि 'नैवेद्य' में माधुर्य के साथ सरसता और सरलता भी है।

हिन्दी-पत्रिकाओं की महारानी 'माधुरी', लखनऊ (कार्तिक, १६८२)—वियोगीजी की कविताओं में रस होता है, जान होती है। इस पुस्तक में ऐसी ही कविताओं का संग्रह है।

The 'Leader', Allahabad—

The poems have been written on the lines of Gitanjali and many of them are quite good.

सुप्रसिद्ध हिन्दू-हितवादी साप्ताहिक 'हिन्दूपंच', कलकत्ता (३० दिसम्बर, १६२६)—'निर्माल्य' बड़ी ही सुन्दर कविता-पुस्तक है। कविताओं में रस, रीति, भाव, अलंकार, सब कुछ है। कोई-कोई कविता पढ़कर हम मुग्ध हुए बिना न रहे। छपाई-सफाई, कागज-जिल्द, सभी कुछ अच्छा है।

प्रसिद्ध सचित्र मासिक पत्र 'महारथी', दिल्ली (मार्गशीर्ष, १९८३)—वास्तव में प्रस्तुत पुस्तक खड़ी बोली के लिए गर्व की सामग्री है। सरस और सुन्दर रचनाओं का संग्रह है। कवितायें पढ़ने योग्य हैं। बीच-बीच में दार्शनिक तत्वों की झलक और भी आनन्द पैदा कर देती है। कविताओं में—तेरे दर्शन, प्रतीक्षा, अज्ञात देश, अनोखा पागल—विशेष उल्लेखनीय हैं। पुस्तक के आरम्भ में महतोजी ने लिखा है—'वरदे! वर दे रचना सुनकर जग चक्कर खा जावे'—सचमुच कहीं पर साधारण मस्तिष्क में चक्कर अवश्य आ जाता है। 'आँसू बनाम वियोगी' कविता हमें बहुत पसन्द आई। कविता उनकी सच्ची प्रतिभा की द्योतक है। 'निर्माल्य' खड़ी बोली के साहित्य में एक अच्छी वस्तु है। छपाई-सफाई भी सुन्दर है।

बालक
सर्व-प्रशंसित, अद्वितीय, सर्वांगसुन्दर,
सुसम्पादित,
बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र
वार्षिक ३), नमूना ।=)
हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

सुबोध-काव्य-माला

१—विद्यापति की पदावली

अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा-परीक्षा में स्वीकृत पाठ्यग्रंथ

सम्पादक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

मासिकपत्रों की महारानी 'माधुरी' लिखती है—इस पुस्तक में मैथिल-कोकिल विद्यापति के २६५ पदों का संग्रह है। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रृंगारी कवियों में उनका उच्च स्थान है। तीन-तीन प्रान्तों में उनकी कविता का आदर है। उनकी भाषा में जो माधुर्य है, वह अलंकृत-काल के अनेक कवियों में, अस्वाभाविक रूप से प्रयत्न करने पर भी, नहीं आया। उनकी कविता में स्वाभाविकता का सर्वत्र प्रमाण मिलता है। हिन्दी श्रृंगारी कवियों में 'हृदय-हीनता' का जो दोषारोपण किया जाता है, उससे वह सर्वथा विमुक्त हैं। प्रस्तुत पुस्तक में, आरम्भ के ५० पृष्ठों में, विद्यापति का परिचय दिया गया है। उनके सम्बन्ध में जितनी जानने योग्य बातें हैं, उन सबका बहुत अच्छी तरह विवेचन किया गया है। भारतीय कला के सुप्रसिद्ध चित्रकार धुरंधर महाशय के ९ चित्रों ने इस पुस्तक की शोभा को कई-गुना बढ़ाकर काव्य और चित्रकला का परस्पर गहन सम्बन्ध पूर्ण रीति से प्रगट कर दिया है। यह संस्करण बहुत ही अच्छा निकला। पाद-टिप्पणियाँ बहुत ही उपयोगी हैं। इस संस्करण की उपयोगिता के विषय

में हम केवल यही कह सकते हैं कि हमारे एक मित्र, जो हिन्दी-साहित्य से सर्वथा विरक्त थे, इन पाद-टिप्पणियों की सहायता से विद्यापति का अध्ययन करके ही, हिन्दी-साहित्य के उपासक बन गये हैं। *Lala Lajpat Rai's world-renowned weekly 'The People' writes:*—Vidyapati is one of the most brilliant jewels of the classical Hindi literature. His place in the History of Hindi poetry is unique. He is second to Surdas only in beautifully depicting Radha's passion. His choice of words is matchless and most appropriate. In sweetness and eloquence he excells all Hindi writers of his age. Pandit Rama Briksha Sharma of Benipur has brought out a beautiful selection of Vidyapati's poem of concise form. The book contains a beautiful preface which gave Vidyapati's life and an estimate of his poetry. Every reader of the

of literary pursuits.

सुन्दर रेशमी जिल्द, सुन्दर नौ चित्र, रेशमी बुकमार्क और चिकने आवरण आदि से सुशोभित, मूल्य २)

२—बिहारी-सतसई

टीकाकार—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी

केवल छः महीने में प्रथम संस्करण बिक गया

अबतक सतसई की जितनी टीकायें निकली हैं, यह उन सबसे सुन्दर, सरल, सुसम्पादित और सस्ती है। यह परिष्कृत और

सम्वर्द्धित द्वितीय संस्करण पहले संस्करण से सुन्दरता, सरलता और सस्तापन, सभी में बढ़ा-चढ़ा है। प्रत्येक दोहे के नीचे उसका स्पष्ट अन्वय, अन्वय के नीचे अत्यन्त सरल भाषा में प्रामाणिक अर्थ, अर्थ के नीचे कठिन शब्दों के सरलार्थ, नोट में दोहे की खूबियाँ और उस दोहे के समान अर्थ वाले उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं के अवतरण दिये गये हैं। थोड़ा पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी इसे पढ़कर सतसई का पूरा मजा लूट सकता है। टीकाकार ने कवि के गूढ़ आशय की बारीक सरसता को साफ आइने की तरह झलका दिया है। आरम्भ में सरस-साहित्य-शिल्पी बाबू शिवपूजन-सहाय-लिखित 'सतसई का सौन्दर्य'-शीर्षक एक सरस निबन्ध है, जिसे पढ़कर बरबस मुग्ध हो जाना पड़ता है। इस नये संस्करण में दोहों की संख्या के साथ-साथ विषय-वर्णन-सूची भी जोड़ दी गई है। छपाई-सफाई की शुद्धता और सादगी देखने ही योग्य। पाकेट साइज। पृष्ठ-संख्या ४०० । सुन्दर सादा कवर-सहित का मूल्य १।), कपड़े की जिल्द १॥)

सुन्दर-साहित्य-माला

१—पद्य-प्रसून

रचयिता—साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध

'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—कविवर उपाध्यायजी के सरस पद्यों का यह एक सुन्दर संग्रह है। उपाध्यायजी के कवित्व पर कौन संदेह कर सकता है। आपकी प्रतिभा वास्तव में ऊँची और मनोमुग्धकारिणी है। हिन्दी-संसार को उपाध्यायजी की रचनाओं पर अभिमान है। वास्तव में वह एक युग के कवि हैं।

उन्हीं की सुन्दर कविताओं का इस पुस्तक में संकलन किया गया है। पावन प्रसंग, जीवन-स्रोत, सुशिक्षा-सोपान, जीवनी-धारा, जातियता-ज्योति, विविध विषय आदि विषयों में कवितायें विभक्त की गई हैं। अन्त में 'बालविलास' नाम के विभाग में बाल-सम्बन्धी कविताओं का बड़ा सुन्दर संग्रह किया गया है। प्रकाशक महाशय ने उपाध्यायजी की सुन्दर कविताओं का संग्रह प्रकाशित कर वास्तव में प्रशंसनीय कार्य किया है, जिसके लिए हम उन्हें बधाई देते हैं।

पृष्ट-संख्या लगभग ३००, कागज मोटा, छपाई सुन्दर, जिल्द पक्की, मूल्य १॥)

२—दागे 'जिगर'

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

कानपुर का प्रतापी साप्ताहिक 'प्रताप' लिखता है—'जिगर' महाशय उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि हैं। कविता वह है, जिसमें कवि का हृदय प्रतिबिम्बित हो, और जिसे पढ़ते ही पाठक के दिल में एक खास तरह की गुदगुदी हो उठे। 'जिगर' प्रकृत कवि हैं। उनके कलाम लाजवाब हैं। 'जिगर' अपनी रचनाओं में बहुत ऊँचे उठे हैं और कहीं-कहीं तो वे 'बेखुदी' के सुखद सरोवर में इतना ऊँचे उठे हैं कि सरोवर के किनारे खड़े रहने वाले को दिखाई भी नहीं पड़ते। 'जिगर' की भावपूर्ण रचनाओं पर 'सुमनजी' की टिप्पणियाँ बहुत सुन्दर हैं। उनसे उर्दू का स्वल्प ज्ञान रखने वालों को भी 'जिगर' की रचनायें समझने में बड़ी मदद मिलेगी। 'सुमनजी' स्वयं कवि हैं। दर्द-भरे दिल की बात समझकर एक वैसा ही हृदय उस पर वास्तविक प्रकाश डाल सकता है। हमें आशा है कि यह पुस्तक हिन्दी के काव्य-साहित्य में यथेष्ट आदर पावेगी।

छपाई-सफाई दर्शनीय। पक्की जिल्द। मू० १।)

३—निर्माल्य

रचयिता—कविरत्न पं० मोहनलालमहतो गयावाल 'वियोगी'

'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—पुस्तक अत्यन्त उत्तम और हिन्दी-कविता क्षेत्र की एक नई वस्तु है। कवि सहृदय हैं। आपकी कविता अति उच्च श्रेणी की होती है। 'निर्माल्य' की-सी कवितायें हिन्दी-जगत् में युगपरिवर्त्तन करने में सहायक हो सकती हैं। हमें आशा है, 'निर्माल्य' की गिनती उन पुस्तकों में होगी, जिन पर खड़ी बोली कुछ अभिमान कर सकती है। **Mahamahopadhyay Dr. Ganganath Jha, M.A., D. Lit, *Vice Chancellor, Allahabad University*** writes—Many thanks for the copy of Nirmalya. It is refreshing to find a young poet *beating out a new path* for himself and succeeding therein. I have read the poems with great interest. I wish the writer every success in life. **प्रयाग की प्रसिद्ध मासिकपत्रिका 'मनोरमा' लिखती है—** नवीन युग के कवियों में श्रीमोहनलाल महतो का एक खास स्थान है। आपकी प्रतिभा वास्तव में प्रखर और उच्च है। हमने इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ा। प्रत्येक छन्द दार्शनिक भावों से भरा हुआ है। पुस्तक बहुत सुन्दर छपी हुई है। हम हिन्दीवालों से सिफारिश करते हैं कि वे इस नवीन काव्यग्रंथ को अवश्य देखें। **Dr. Sir Rabindranath Tagore's Private Secretary** *writes*:—Dr. Tagore sends his best thanks for copy of your book of verses Nirmalya. He si impressed by the use you have made of new metres and rhyme-combinations in your poetry. The book

is sent on to our library where it will be read with interest by our scholars working on Hindi.

देशमान्य श्री बाबू राजेन्द्रप्रसादजी, एम. ए., एम. एल. लिखते हैं—मैं 'निर्माल्य' को प्रायः आद्योपान्त पढ़ गया, और कुछ अंशों को तो एक बार से अधिक। हिन्दी-कविता में एक बड़ा परिवर्त्तन होता दीख रहा है, और आपका 'निर्माल्य' भी उस परिवर्त्तन में सहायता पहुँचा रहा है। भाव और भाषा में सामंजस्य है। अनेक स्थानों पर भाव और भाषा दोनों का ही बड़ा उत्कर्ष है। आशा है, आपके द्वारा मातृभाषा के पुनीत चरणों पर ऐसे ही अलौकिक 'निर्माल्य' चढ़ते रहेंगे।

सुन्दर रेशमी जिल्द, रचयिता का सचित्र परिचय, मूल्य १)

४—महिला-महत्त्व

लेखक—श्रीशिवपूजनसहाय

'माहेश्वर-सर्वस्व' (होलिकांक) लिखता है—श्रीयुक्त बा० शिवपूजन सहायजी सरस एवं गद्यकाव्य के लक्षणों से समन्वित भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं, यद्यपि इसका आभास हम उनके सम्पादित मासिकपत्रों में ही पा चुके हैं; पर इस पुस्तक को देखने से यह भाव और भी पुष्ट हो गया है। इस पुस्तक में १० महत्त्वपूर्ण आख्यायिकायें हैं। इनकी सामग्री का संग्रह टाड साहब के राजस्थान से एवं जनश्रुत घटनाओं से किया गया है; पर भाषा और भाव आदि सभी लेखक के होने से इसको लेखक की मौलिक रचना कहना सर्वथा उपयुक्त है। इसकी भाषा सरसा, सालंकारा और सानुप्रासा है। इसमें संस्कृत गद्यकाव्य कादम्बरी की छटा दिखलाई पड़ती है। हिन्दी-उर्दू के वर्तमान और प्राचीन कवियों की कवितायें भी यत्रतत्र उद्धृत की गई हैं।

पुस्तक की भाषा इतनी सुन्दर है और पतिव्रता नारियों का चरित्र-चित्रण इतना मनोरम हुआ है कि एक-आध दोष चन्द्रमा में कलंक की तरह उसकी शोभा को बढ़ाने वाला ही है। छपाई और कागज आदि सुन्दर है। सचित्र। मूल्य २)

५—कविरत्न 'मीर'

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

कलकत्ते का प्रसिद्ध पत्र 'मतवाला' लिखता है—'कविरत्न मीर'—मजबूत जिल्द से ढँकी हुई, छपाई-सफाई और कागज प्रशंसनीय। श्रीयुत 'प्रेमचंद'जी का दो शब्द, बाबू शिवपूजनसहायजी का 'परिचय' और फिर लेखक का लिखा 'बेहोश लहरों में' इस पुस्तक के अग्र भाग की शोभा बढ़ा रहे हैं। 'दागे जिगर' की अपेक्षा 'कविरत्न मीर' की समालोचना में 'सुमनजी' अधिक सफल हुए हैं।...अर्थ सुमनजी ने बड़ा ही साफ और मर्मस्पर्शी किया है। पढ़कर एकाएक हृदय काँप उठता है। 'सुमनजी' वास्तव में कविता के मर्मज्ञ हैं। समालोचना सूक्ष्मदर्शिता की पराकाष्ठा तक पहुँच गई है। खटकने वाला एक शब्द भी नहीं। इस पुस्तक को पढ़कर 'सुमनजी' की कृपा से 'मीर' की कविता का जो आनन्द मिला, उसकी याद मेरी स्मृति की अन्तिम सामग्री होगी। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशक को हजारों धन्यवाद।

ऐसी सर्वप्रशंसित पुस्तक का मूल्य केवल १॥।)

६—विहार का साहित्य

हास्य-रसावतार पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, गद्य-कवि राजा राधिकारमण प्रसाद सिंहजी, सुसमालोचक बाबू शिवनंदन सहाय, साहित्यमर्मज्ञ पं० सकलनारायण शर्मा और भारतेन्दु के समकालीन

वयोवृद्ध कवि पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र के बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष-रूप से दिये गये भाषणों का यह सुसम्पादित संग्रह है। बिहार-रत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद एम० ए०, एम० एल० आदि पाँच स्वागताध्यक्षों के भाषण भी इसमें संकलित हैं। देखिये, इसके विषयमें पटने का सुप्रसिद्ध अँगरेजी-द्विदैनिक 'सर्चलाइट' क्या लिखता है—The gentlemen concerned are wellknown in *Hindi literary world* and their addresses, both in form and matter, have certainly more than ephemeral interest attached to them. It was therefore a happy idea to bring out a collection of those addresses. We would particularly commend to the readers the remarkable address of Raja Saheb Surajpura. It is all poetry in prose. We congratulate *the publishers on their happy idea of bringing out* this volume.

पृष्ठ-संख्या ३००, पाँचो सभापतियोंके चित्र, पक्की जिल्द, मू० १॥)

७—देहाती दुनिया

लेखक—श्रीशिवपूजनसहाय

पटने का प्रसिद्ध साप्ताहिक 'देश' लिखता है—हिन्दी-संसार में बाबू शिवपूजन सहाय को कौन नहीं जानता। आप हास्यरस के बड़े ही रसिक हैं। *आपने जितनी पुस्तकें लिखी हैं*, सब-के-सब चित्ताकर्षक एवं दिल को लोटपोट कर देने वाली हुई हैं। 'देहाती दुनिया' आपकी एक नवीन रचना है। और्गें चाहती हैं, हमेशा उलट-पलटकर देखते ही रहें। गौर कर देखने से ठेठ दिहात का साक्षात् चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है।

अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका 'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—सुन्दर हृदय-ग्राही और उत्कृष्ट हिन्दी-भाषा तथा देवनागरी-लिपि में सुन्दर लेखन (हैंडराइटिंग) के लिए जो शिवपूजन सहाय हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध हैं, उन्हीं का लिखा हुआ यह ठेठ दिहाती घटनाओं से पूर्ण एक सामाजिक मौलिक उपन्यास है। इसकी वर्णनशैली रोचक और सजीव एवं कथानक स्वाभाविक चित्ताकर्षक है। सुन्दर और उत्कृष्ट भाषा लिखने में सिद्धहस्त बाबू शिवपूजन सहाय ने देहातियों के लिए उपयुक्त ठेठ हिन्दी में इस उपन्यास को लिखकर अपनी लेखन-कला-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। मध्यप्रदेश का प्रबल साप्ताहिक 'कर्मवीर' लिखता है—शहराती मनचले अपने अधूरे आदर्शवाद और शाब्दिक ज्ञान के सहारे चाहे पुस्तक का मूल्य नहीं समझें, किन्तु उन ग्रामीणों के लिए—जिनकी जीवन-घटनाओं का अनुभव कर यह पुस्तक लेखक ने लिखी है—मनोरंजन और उपदेश का अच्छा साधन है।

सुन्दर चमकीली जिल्द पर सोने के अक्षरों में नाम, भावक पेपर का आवरण, रेशमी बुकमार्क। मूल्य १॥)

८—प्रेम-पथ

लेखक—पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी

कानपुर का प्रतापी 'प्रताप' अपनी लम्बी समालोचना में लिखता है—पुस्तक एक मौलिक सामाजिक उपन्यास कहानी, लेखक की शैली, भाषा, चरित्र-चित्रण तथा भाव इतना सुन्दर, प्रिय, साहित्यिक और मनोहर है कि पाठक मानों भ[illegible]के उद्यान में विचर रहे हैं। भाषा की दृष्टि से एक बार हम

फिर कहते हैं कि पुस्तक बहुत साहित्यिक और मर्मस्पर्शिनी है। अपनी आलोचनात्मक भूमिका में प्रेमचंदजी लिखते हैं—भगवतीप्रसादजी ने हिन्दी-संसार को यह बहुत ही अच्छी वस्तु भेंट की है। इसमें वासना और कर्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व देखकर आप दंग हो जायँगे।

अँगरेजी ढंग की पक्की जिल्द, सुनहला नाम, सुन्दर आवरण, रेशमी बुकमार्क, छपाई शुद्ध-सुन्दर, मूल्य २)

६—नवीन वीन

रचयिता—प्रोफेसर लाला भगवान 'दीन'

'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—यह ग्रंथ प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी की ४२ सरस कविताओं का संग्रह है। २० कवितायें सचित्र हैं। दीनजी हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध समालोचक, ब्रजभाषा के मर्मज्ञ तथा सहृदय कवि हैं। खड़ी बोली में, उर्दू-कविता के वज़न पर, कवितायें लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। इस संग्रह में आपकी वीर-रस, प्रकृति-वर्णन, ऋतु-वर्णन तथा देशभक्तिपूर्ण अनेक कवितायें बहुत सुन्दर हैं। आपकी लिखी ब्रजभाषा की कवितायें भी इसमें संग्रहीत हैं। दीनजी की स्फुट कविताओं का संग्रह अभी तक नहीं निकला था। प्रकाशक ने आपकी कविताओं का संग्रह निकालकर हिन्दी के आधुनिक ख्यातनामा कवियों की कविताओं के संग्रह-साहित्य के एक अभाव की पूर्ति की है।

कागज और छपाई-सफाई सुन्दर, पक्की जिल्द, आर्ट पेपर पर छपे २० चित्र, मूल्य केवल २)

१०—प्रेमिका

अनुवादक—'हिन्दूपंच'-सम्पादक पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा

यह जगत्प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका 'मेरी कारेली' के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'थेल्मा' का अत्यंत सरल एवं सरस अनुवाद है। इसमें आदर्श दाम्पत्य प्रेम का चित्ताकर्षक चित्र, नगर और ग्राम की युवतियों के स्वभाव के बारीक भेद, हार्दिक प्रेम का जबरदस्त आकर्षण, प्रेममयी पत्नी की पति-परायणता का अद्भुत गौरव, दिल की सच्ची लगन की अनुपम मधुरता, विलायत का पतित और घृणाजनक सामाजिक जीवन, कुसंगति का भयंकर और घातक दुष्परिणाम, विलायत का अशान्तिप्रद दाम्पत्य-सम्बन्ध, उन्नति और सभ्यता की बनावटी खाल से ढके हुए छल-दम्भ बड़े ही प्रभावशाली ढंग से अंकित हैं। लेखिका की मनोहर वर्णनशैली को भावुक अनुवादक की धारा-प्रवाह भाषा ने ऐसा सजीव बना दिया है कि देखते ही बनता है। रेशमी जिल्द पर सुनहले अक्षर, चिकना पेपर, रेशमी बुकमार्क—सभी कुछ अनोखा और नेत्ररंजक है। आरम्भ में मूल-लेखिका का समालोचनात्मक परिचय और अनुवादक का चित्र। पृष्ठ-संख्या लगभग ४००; मूल्य २॥)

११—विमाता

लेखक—श्रीयुत अवधनारायण

यह एक मर्मतलस्पर्शी सामाजिक उपन्यास है। इसके ऐसा हृदयग्राही प्लाट हिन्दी के बहुत ही कम उपन्यासों को नसीब हुआ है। दो-दो संस्करणों की हजारों कापियाँ थोड़े ही समय में बिक जाना इसकी उपयोगिता का सर्टिफिकेट है। तीसरा संस्करण

अत्यंत सुसज्जित एवं सुसम्पादित है। लेखक ने समाज के चरित्रों का जीता-जागता खाका सामने ला रखा है। पढ़ते जाइये और सामाजिक चरित्रों पर विचार कर देखिये कि सचमुच भारतवर्ष में यह यथार्थ घटता है कि नहीं। हम शर्तिया कह सकते हैं कि ऐसा कारुणिक मौलिक उपन्यास हिन्दी में शायद ही कोई हो। पढ़कर आप अनायास वाहवा कह उठेंगे। इसका करुण-रसात्मक वर्णन पढ़कर आँसू बहने लगते हैं। सरल मुहावरेदार भाषा और साहित्यिक वर्णन-छटा! सजिल्द, मूल्य २॥)

नवयुवक-हृदय-हार

१—प्रेम

लेखक—आचार्य अश्विनीकुमार दत्त

प्रेम क्या है? आज-कल स्कूल और कालेज में, शहर और बाजार में, जो 'प्रेम' हम देखते हैं, प्रेम क्या वही है? नहीं, कदापि नहीं। वह प्रेम नहीं, मोह है, तृष्णा और वासना है—मृग-मरीचिका है। तो फिर प्रेम है क्या? इसकी विस्तृत व्याख्या देखनी हो, तो इसे पढ़िये। अश्विनी बाबू की सचित्र जीवनी सहित। पृष्ठ १००, द्वितीय सुसम्पादित संस्करण, मूल्य।=)

२—जयमाल

लेखक—श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

उपन्यास लिखने में शरत् बाबू अपना जोड़ नहीं रखते। एशिया के महान लेखकों में आपकी गिनती होती है। उन्हीं की 'परिणीता' नामक एक प्रेम-कहानी का यह सुन्दर अनुवाद है।

अनुवादक हैं हिन्दी-संसार के सुपरिचित विद्वान बाबू रामधारी प्रसादजी विशारद—मंत्री, बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन। पृष्ठ १००। मूल-लेखक का चित्र। मूल्य ।≈)

३—विपंची

रचयिता—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

इसमें 'सुमनजी' की चुनी-चुनाई उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह है। 'प्रताप' का कहना है कि 'केवल इसकी पहली कविता पर ही एक ही चवन्नी की कौन कहे, कितनी ही चवन्नियाँ—चाँदी की नहीं, सोने की—निछावर कर दी जा सकती हैं।' छपाई बिल्कुल अनूठी। सादगी में खूबसूरती! मूल्य ।)

४—कली

(तीन मधुर मस्तिष्कों का मलय-मकरन्द)

यह बिहार-प्रान्त के तीन प्रतिभाशाली नवयुवक कवियों की चमत्कारपूर्ण कविताओं का संग्रह है। इसमें ऐसी-ऐसी छबीली रचनायें हैं कि पढ़कर आप बरबस कलेजा पकड़ लेंगे। कविताओं में भावुकता और सहृदयता तथा रस-मर्मज्ञता की गहरी छाप है। छपाई-सफाई दर्शनीय। आप जेब में ही रखे फिरेंगे। मू० ।)

५—मधु-संचय

रचयिता—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी

यह पुस्तक नवयुवकों के हृदय को बरबस मुग्ध करने वाली है। छपाई-सफाई बिल्कुल अप-टु-डेट अँगरेजी फैशन की है। इसमें छवि, प्रेम और विरह पर प्राचीन एवं नवीन कवियों की चुनिन्दा रसीली कविताओं का संकलन किया गया है, जिससे यह एक प्रकार का अतीव मनोरंजक पद्यात्मक उपन्यास बन गया है। मूल्य ।≈)

६—अन्तर्जगत

लेखक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र

यह पुस्तक छायावाद की कविता में जागृति की नई लहर पैदा करनेवाली है। आन्तरिक वेदना का बड़ा ही कारुणिक शब्द-चित्र है। भावमयी ललित रचना अत्यंत मुग्धकारिणी है। मू० ।)

७—मैत्रीधर्म

लेखक—श्रीयुत बाबू गुलाबराय, एम. ए., एल एल. बी.

इसमें मैत्रीधर्म की अत्यन्त सरल सुबोध दार्शनिक व्याख्या की गई है। मित्र और मित्रता के गुण-दोषों की पांडित्यपूर्ण मार्मिक विवेचना ने इस पुस्तक को नवयुवकों के लिए बड़ा ही उपदेशप्रद बना दिया है। झूठी मित्रता के धोखे से बचना हो तो इसे एक बार अवश्य पढ़िये। मू० ।)

८—यूथिका

लेखक—श्रीगोपाल नेवटिया

इसमें आठ अनूठी कहानियाँ हैं—साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक। सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद और सरस तथा मनोहारिणी हैं। कई कहानियाँ गद्य-काव्य की तरह अविरल आनन्द देने वाली हैं। पढ़कर और छपाई-सफाई देखकर आप निश्चय ही मुग्ध हो जायँगे। मू० ।=)

सरल पद्य-माला

१—बाल-विलास

रचयिता—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

'माधुरी' लिखती है—इस छोटी-सी पुस्तक में २१ विषयों को लेकर बालकोपयोगी रचना की गई है। विषय ऐसे चुने गये

हैं, जिनके पढ़ने में बालकों का चित्त लगे। भला गिलहरी, बन्दर, कोयल, जुगनू और बूँदियों के विषय में कविता पढ़ने के लिए किस बालक का मन न चाहेगा ? हमारा विश्वास है, बालक-वृन्द इसे बड़े चाव से पढ़ेंगे। ऐसी प्रशंसित पुस्तिका का मूल्य ।)

२—कविता-कुसुम

संकलयिता—श्रीरामवृक्षशर्मा बेनीपुरी

हिन्दी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की बालोपयोगी कविताओं का इसमें सुन्दर संकलन है। समूची पुस्तक विनय-वाणी, वन-विहार, पवित्र परिवार, पुनीत पर्व, प्रकृति-पर्यवेक्षण, बुढ़ापा बनाम बचपन, वीर-विरुदावली और स्वर्गीय संदेश—इन आठ भागों में विभक्त है। कवियों में अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनाथ भट्ट, 'सनेही', अमीरअली मीर, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवानदीन और रघुवीरनारायण मुख्य हैं। पृष्ठ-संख्या ७०, बार्डर-युक्त सुन्दर छपाई, मूल्य ।)

बाल-मनोरंजन-माला

'बालक'-सम्पादक द्वारा लिखित और सम्पादित

१—बगुला-भगत

लड़कों और लड़कियों के लिए बड़ी ही मनोरंजक पोथी। कई मनोरंजक चित्रों से सजाई हुई। इसमें बगुला-भगत की धूर्तता, पोठिया-देवी की चतुराई, केकड़ा-चौबे का साहस, बगुला-भगत और उनकी भगतिन की चोरों का सफाया, भगत का वैराग्य, मानसरोवर के हंसों के गुरु बगुलाजी का भयानक भंडाफोड़ आदि पढ़ते ही लड़के हँसते-हँसते लोटपोट हो जाते हैं। मूल्य ।=)

२—सियार पाँड़े

'देश'—इसे पढ़ने में मन लगता है, बच्चे बड़े चाव से पढ़ेंगे। सभी पिताओं को यह पुस्तक अपने बच्चों को देनी चाहिये। 'मनोरमा'—पुस्तक बच्चों के लिए अच्छी और लाभदायक है। 'कर्मवीर'—बच्चों के मन-बहलाव के लिए यह पुस्तक है। मनोरंजन के साथ-साथ जगत का किंचित् परिचय भी बालकों को इससे होगा। मूल्य ।=)

३—बिलाई मौसी

जिस पुस्तक को देखने के लिए आज एक वर्ष से लोग होहल्ला मचा रहे थे, जिसके लिए हजारों की संख्या में माँगें आ चुकी हैं, वही पुस्तक अनोखी सजधज से छपकर तैयार हो गई है। इसमें एक दर्जन से अधिक रंग-बिरंगे मनोमोहक चित्र हैं। सुन्दर टाइप में बड़ी सफाई से छपी है। मूल्य ॥)

४—हीरामन तोता

इसका कुछ भाग तो 'बालक'-सम्पादक ने स्वयं लिखा है और कुछ भाग उनके मित्र लेखकों द्वारा लिखा गया है। प्रत्येक पृष्ठ में आकर्षण है। एक दर्जन से ऊपर सुन्दर-सुन्दर चित्र हैं, जिन्हें देखकर बालक मुग्ध हो जायँगे। ऐसी सुसज्जित, सुसम्पादित और सचित्र पुस्तक का मूल्य ॥) मात्र।

५—आविष्कार और आविष्कारक

हिन्दी-संसार में सर्वथा अपूर्व और अनूठी पुस्तक है। इसमें संसार के मुख्य-मुख्य आविष्कारों—रेल, तार, जहाज, हवाई जहाज, पनडुब्बी जहाज, ग्रामोफोन, बे-तार का तार, छापाखाना, टेलीफोन, बिजली—और उनके आविष्कारकों के विषय में बड़ी ही

सुबोध और दिलचस्प कहानियाँ हैं, लगभग दो दर्जन चित्र हैं, जिससे विषय के समझने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। छपाई-सफाई अपूर्व ! मूल्य ॥)

३—संसार के पहलवान (पहला भाग)

यदि आप चाहते हैं कि भारत के बच्चे पहलवान और वीर बनें, उनकी हड्डियाँ इस्पात-सी मजबूत और नसें विद्युद्वाही हों, तो इस पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक बालक-बालिका के हाथ में दीजिये। यह पुस्तक शरीर को हृष्टपुष्ट बनाने की ओर उनका ध्यान आप ही खींच लेगी। संसार के नामी-नामी पहलवानों के सुन्दर सुडौल शरीर देखकर बच्चे आज ही से व्यायाम की ओर झुक पड़ेंगे। लगभग डेढ़ दर्जन चित्र, तो भी मूल्य ॥)

महिला-मनोरंजन माला

१—दुलहिन

लेखिका—श्रीमती चन्द्रमणि देवी

'मनोरमा' लिखती है-यह नई बहुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसे प्रत्येक महिला को पढ़ना चाहिये। लेखनशैली चित्ताकर्षक और अच्छी है। आशा है, लोग इस पुस्तक का आदर करेंगे। 'कर्मवीर' लिखता है—इस पुस्तक में युवती कन्याओं को उचित उपदेश दिया गया है। पुस्तक बहुत उपयोगी है।

नई बहुओं के क्या कर्त्तव्य हैं, यह इसमें सरल भाषा में समझाया गया है। दूसरा संस्करण लाल बोर्डर के बीच नीली रोशनाई से मोटे अक्षरों में परम सुन्दर छपा है। मूल्य ।)

२—सावित्री

लेखिका—स्वर्गीया शिवकुमारी देवी

'प्रताप' लिखता है—छपाई-सफाई अच्छी है। पुस्तक एक बालिका—जो हिन्दी के दुर्भाग्य से अल्पायु में ही स्वर्गवासिनी हो गई—की लिखी हुई है। तथापि भाषा इतनी अच्छी है कि सहसा यह सोचकर आश्चर्य होता है कि एक बालिका इतनी अच्छी भाषा लिख सकती है। 'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—पौराणिक कथानक के आधार पर इसकी रचना लेखिका ने अच्छे ढंग से की है। नवयुवतियों को इसका अध्ययन कर पातिव्रत-धर्म की शिक्षा ग्रहण कर लाभ उठाना चाहिये'।

नीली रोशनाई में, लाल बोर्डर के साथ, बड़ी सुन्दरता से शुद्ध छपी है। फिर भी मूल्य केवल ।)

३—अहिल्याबाई

लेखक—पं० जटाधर प्रसाद शर्मा 'विकल'

भारतीय नारियाँ केवल सतीत्व और वीरता ही के लिए प्रसिद्ध नहीं हैं, किन्तु समय पड़ने पर उत्कृष्ट कोटि की शासिका का काम करके भी प्रसिद्धि प्राप्त कर सकती हैं—इसका नमूना देखना हो तो, इस पुस्तक को पढ़िये'। अहिल्या सतीत्व की साक्षात् मूर्ति और धर्म की पुण्य प्रतिमा थी। वीरता और चतुरता भी उसमें प्रचुर परिमाण में पाई जाती थी। ईश्वर-भक्ति-परायणा, प्रजावत्सला इस रमणी-शिरोमणि का चरित्र दर्शनीय है। यह भी नीली रोशनाई से बोर्डर के बीच में सुन्दरता से छपी है। भाषा सरल-सुबोध। शैली सरस और मनोरंजक। सर्वांग-सुन्दर होने पर भी मूल्य केवल ।)

चारु-चरित-माला

१—शिवाजी

लेखक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

'साहित्य-समालोचक' लिखता है—हिन्दूकुलगौरव महाराज शिवाजी का संक्षिप्त जीवनचरित्र अच्छी भाषा में अच्छे ढंग से लिखा गया है। छत्रपति शिवाजी के जीवन की सभी मुख्य-मुख्य घटनाओं का वर्णन संक्षेप में आ गया है। सचित्र, मू० ।)

२—लंगटसिंह

लेखक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—श्रीलंगटसिंह बिहार के उन पुरुष-रत्नों में थे, जिन्होंने अपने ही पुरुषार्थ के बल पर, अत्यंत साधारण स्थिति से उठकर असाधारण उन्नति की। इन्हीं महापुरुष का परिचय लेखक ने बड़े ही प्रांजल और हृदयग्राही भाषा में दिया है। सचित्र, मूल्य ।)

३—विद्यापति

लेखक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

'मनोरमा' लिखती है—इसमें हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मैथिल-कोकिल विद्यापति की जीवनी बड़े खोज और मनन के साथ लिखी गई है। बीच-बीच में उनकी कविता पर भी आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। हम हिन्दी-काव्य-प्रेमियों तथा अन्य लोगों से इसके पढ़ने की सिफारिश करते हैं। मूल्य ।)

४—माइकेल मधुसूदनदत्त

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

'माधुरी' कहती है—माइकेल मधुसूदन दत्त

प्रतिभा-सम्पन्न थे, यह सर्वमान्य बात है। बँगला-काव्य-क्षेत्र में उन्होंने एक नवीन पथ का प्रवर्तन किया है। उनका जीवनचरित्र लिखकर अच्छा काम किया गया है। 'मतवाला' कहता है—अवश्य संग्रह योग्य है, अवश्य पढ़ने लायक है। सचित्र, मू० ।)

५—गुरु गोविन्दसिंह

लेखक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

यह पंजाब के उसी जगत्प्रसिद्ध सिक्खगुरु वीर-शिरोमणि गोविन्दसिंह की ओजस्विनी जीवनी है, जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की नींव हिलाकर अपने अलौकिक पुरुषार्थ से भारत में सिक्ख-सम्प्रदाय की विजय-पताका फहरा दी थी। बड़ी ही जोरदार भाषा में लिखी गई है। सचित्र, मूल्य ।)

६—शेरशाह

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

हिन्दी में अभी तक शेरशाह-जैसे सुयोग्य शासक की कोई जीवनी नहीं निकली है। सुमनजी-सरीखे मननशील और खोजी लेखक ने अँगरेजी के अनेक प्रामाणिक इतिहासग्रन्थों के आधार पर इसे लिखा है। शेरशाह कैसा न्यायी और प्रजाप्रेमी बादशाह था—उसके राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था का कैसा जबरदस्त सिक्का जमा हुआ था—अपनी कैसी शासनप्रणाली के कारण वह एक अद्वितीय मुसलमान-शासक था, यह सब जानना हो तो इस जीवनी को अवश्य पढ़िये। मूल्य ।)

हमारे यहाँ अन्य सभी प्रकाशकों की पुस्तकें मिलती हैं

हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (बिहार)